॥ श्री ॥

* शुद्धि-पत्रक *

पृ०	प०	अशुद्ध		शुद्ध
२४	२१	ममाया	.	समायो
२५	४	कमनो	.	कर्मनो
२५	१४	जांइप	.	जोइए
२५	१५	उपर्नी	.	उपज्नी
३२	३	ए	.	एक
३३	२१	सत्व		सत्त्व
३६	९	भावियप्या	.	भावियप्पा
३९	७	शा	...	शा
४०	१८	छ	.	छे
४०	२०	कने	..	सत्कने
४१	१०	छ	.	छे
४३	१३	मूते	.	मूतेषु
४८	०	तृणकुरा	..	तृणाङ्कुरा

प्रस्तावना

न मुनि महाराजश्री के आश्चर्यजनक अवधान-प्रयोग हम देख चुके हैं, उन शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी महाराजश्री का उत्तर-भारत की ओर आने का प्रधान कारण श्री साधु-सम्मेलन है, जो स्वनामधन्य अजमेर में दो साल पूर्व बड़े समारोह से हुआ था।

शतावधानी महाराजश्री अजमेर से विहार करके जयपुर पधारे और वहां चातुर्मास किया। जैन और जैनेतर के अत्याग्रह से श० महाराजश्री ने जयपुर की विद्वत्समाज के समक्ष अवधान-प्रयोग करके अपनी ज्ञानशक्ति और स्मरणशक्ति का परिचय दिया।

श० महाराजश्री का विचार जयपुर से विहार करके दिल्ली की ओर जाने का और वहां चातुर्मास करने का होने से, उस समय गर्मी बढ़ जाने के कारण और अलवर श्री संघ का अत्याग्रह होने के कारण महाराजश्री का अलवर में पधारना हुआ।

इस चातुर्मास में महाराज श्री के रोचक और विद्वत्तापूर्ण व्याख्यानादि द्वारा जो धर्मजागृति, धर्मप्रभावना और ज्ञानोद्योत के कार्य हुए हैं, वे हमारे लिए चिरस्मरणीय रहेंगे।

यह लिखते हुए हमें अत्यन्त दुःख होता है कि स्व मुनि श्री कपूरचन्द्रजी महाराजश्री जो शान्तस्वभावी और मधुरभाषी थे व प्रभावक ही यहाँ पर कालधर्म को प्राप्त हो गए। इस अशुभ प्रसङ्ग से काठियावाड़ के श्रावकगण ने काठियावाड़ की ओर पधारने का अत्याग्रह किया और महाराजश्री का भी वापिस लौटने का विचार हो गया किन्तु अलवर श्री संघ का महाराज श्री का चातुर्मास कराने का अत्याग्रह होने पर महा-राज श्री को चातुर्मास करने की स्वीकृति देनी पड़ी

अलवर की जैन और जैनेतर-समाज से महाराजश्री के उपधान-प्रयोग देखने के लिए बहुत दिनों से लालायित रहती थी कि महाराजश्री के उपधान-प्रयोग अलवरमें भी होने चाहिए। श्री संघ ने महाराजश्री से उपधान-प्रयोग करने के लिए साग्रह प्रार्थना की किन्तु महाराजश्री का उस समय शास्त्रीय-पुस्तक रचना का काम चल रहा था जिसके कारण उपधान-प्रयोग बीच में न करते हुए चातुर्मास के अन्त में करने की स्वीकृति दी।

अलवर के श्वे॰ जैन-समाज ने उपधान-प्रयोग का प्रबन्ध सुचारु-रूप से करने के लिए दि॰ समाज और स्था॰ समाज से सहायता और सहयोग की प्रार्थना की। उक्त दोनों समाजों ने सहर्ष अपना कर्तव्य समझ कर तन मन और धन से सहायता और सहयोग देकर अपनी उदारता का परिचय दिया। इस प्रकार महावीर भगवान के तीनों ही पुत्र—दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी समाज ने—साथ मिलकर उपधान-प्रबन्ध कमेटी नियुक्त की। सभापतिपद श्री चिरञ्जीलालजी B A वीरसंघ प्रेसीडेन्ट को दिया गया और उनकी सूचनानुसार प्रबन्धक-कमेटी का कार्य सुचारुरूप से चलने लगा।

अवधान-प्रबन्धक-कमेटी की ओर से निम्न-प्रकार का आमन्त्रण पत्र १००० की संख्या में वितीर्ण किये गये थे :—

स्मरण-शक्ति के अद्भुत-प्रयोग

※ आमन्त्रण-पत्र ※

श्रीमान् ————————————

मान्यवर महोदय ! अलवर में चातुर्मासस्थित शतावधानी मुनीश्वर श्री रत्नचन्द्रजी महाराज ने अवधान के आश्चर्य-जनक प्रयोग करने की स्वीकृति दी है । अत आपसे साग्रह अनुरोध है कि अवधारण-शक्ति के अद्भुत-प्रयोग को देखने के लिये नियत समय पर अवश्य पधारने की कृपा करें ।

स्थानः—राजऋषि-कॉलेज, अलवर । समयः—प्रात ८ बजे ता० ११-१०-२४ ज्ञानपञ्चमी-रविवार ।

निवेदक —

(१) ठाकुर कल्याणसिंह ताजीमी सरदार जा० बीजवाड ।

(२) लाला छैलबिहारीलाल, एकाउन्टेन्ट-जनरल ।

(३) मिस्टर एस० पी० भार्गव एम० ए० एल० एल० बी० प्रिन्सिपल, राजऋषि कॉलेज ।

(४) पण्डित रामेश्वरनाथ, एम० ए० एल-एल बी० सैशनजज

(५) पण्डित के० के० नानावटी, एम० ए० वाइस प्रिन्सिपल राजऋषि कॉलेज ।

(६) साह चिरञ्जीलाल, बी० ए० फर्स्ट-क्लास मैजिस्ट्रेट ।

(७) लाला रामकंवार, स्टेट ओफसनर ।

(८) लाला सोहनलाल पास सुमि चौक बॉस्कान।
(९) चौधरी रामरतमल जैन।
(१०) लाला गूजरमल सुखन्ति।

नोट—[illegible] इस [illegible] का हाल होगा।

आवश्यक-सूचनाएँ

उपस्थित महानुभाव निम्न-लिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें।

[१] कार्य-क्रम निश्चित समय पर आरम्भ हो जायगा अतः नियत समय से १५ मिनिट पूर्व ही उपस्थित हो जावें।

[२] नियत-स्थान पर शान्ति से विराजे रहें ताकि व्याख्यानों की शान्ति में बाधा न पड़े—बिना किसी खास प्रयोजन के बातचीत न करें।

[३] सभा-भवन में बीड़ी-सिगरेट पीना सर्वथा वर्जित है।

[४] व्याख्यानों के प्रयोगों के निमित्त स्थानीय विद्वान् प्रश्नकर्ता नियत किये गये होंगे। अतः वे ही प्रयोग-सम्बन्धी विषयों पर प्रश्न पूछ सकेंगे—यदि नियत प्रश्न-कर्त्ताओं के अतिरिक्त अन्य कोई सज्जन व्याख्यान-सम्बन्धी प्रश्न पूछना चाहें तो वे केवल नियत प्रश्नकर्त्ताओं द्वारा ही पूछ सकेंगे।

[५] जो सज्जन व्याख्यान के समय प्रश्न पूछना चाहें वे ता० ८-११ ३४ तक प्रश्न का विषय जो पहिले से ही चुने हुए हैं, लिखकर अपने हस्ताक्षरों से भेज दें व्याख्यान-

मैनेजिङ्ग-कमेटी के पास भिजवा दें। कुल प्रश्नों की संख्या समय के अनुसार १०० से अधिक न रक्खी जायगी।

[६] १६ वर्ष से कम अवस्थावाले बच्चों का प्रवेश न हो सकेगा।

[७] कार्य्य-क्रम सभा में समय से पूर्व वितीर्ण होगा और मैनेजिङ्ग-कमेटी की मर्जी से यदि कोई विशेष कारण हुआ तो बदला भी जा सकेगा।

[८] स्त्री-वर्ग के लिए बैठक की पृथक् व्यवस्था नहीं है।

* * *

अवधान-प्रयोग ज्ञानपञ्चमी के दिन अलवर शहर के बाहिर राजऋषि-कॉलेज में हुआ था। यथासमय पर ताज़ीमी सरदार, जागीरदार, ऑफिसर, पण्डित वर्ग आदि प्रतिष्ठित सभा-जन उपस्थित हो गये थे। सभा का प्रमुखस्थान श्री रामभद्रजी ओझा, चीफ जस्टिस अलवर हाईकोर्ट को दिया गया था।

* * *

सभा का कार्य प्रारम्भ करने के पहिले श्री चिरञ्जीलालजी सभापति, अवधान-प्रबन्धक-कमिटि ने 'मेरी भावना' का प्रार्थना-गान सबको सुनाया। जिसका प्रभाव सभाजनों पर अच्छा पड़ा।

तदनन्तर श्री धीरजलालभाई, अधिष्ठाता, जैन गुरुकुल, ब्यावर ने शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी महाराज का संक्षिप्त जीवन-चरित्र निम्न-अनुसार कह सुनाया:—

प्रवचनकर्त्ता का जीवन परिचय

ज्ञान-पञ्चमी के शुभ प्रातःकाल में मुनि-मण्डल के बीच गजगति से राजभूमि-कोटिग्राम की तरफ आती हुई यह सन्तमूर्ति कौन थी ? देखने वाले को सहज ही भान हो जाता कि ये ही शतावधानी होने चाहिए। 'आकृतिर्गुणान् कथयति' इस न्याय के अनुसार उनकी परम शान्ति और महत्ता का भान दर्शक के हृदय में स्वाभाविक ही आ जायेगा। इस शान्तमूर्ति के अद्भुत अवधान और उनकी विलक्षण प्रतिभा देखकर हम सब आश्चर्यचकित हो गये थे। यहाँ पर उनका जीवन-परिचय देते हुए हमको अपार हर्ष होता है।

शतावधानी पं० श्री रत्नचन्द्रजी महाराज का शुभ-जन्म भोराणा (जिला कच्छ मुन्द्रा) गाँव में ओसवाल-जाति में विक्रम संवत् १९३६ वैशाख शुक्ल १२ शुक्रवार को हुआ था। आपके पिता का नाम वीरपालभाई, माता का नाम लक्ष्मीबाई और आप का संसारपक्ष का नाम भी रायसीभाई था।

बाल्यवय में गुजराती छः किताबें पढ़कर बारह वर्ष की आयु में अपने बड़े भाई के साथ आप व्यापार-कार्य में लग गये। उस समय बम्बई, दक्षिण, मालवा और अन्य स्थानों की अपनी पेढ़ी की शाखाओं में व्यापार सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया। साथ ही साथ ज्ञानी और विचार के लिए उपयोगी मनुष्य के स्वभावानुभव का शिक्षण भी लेने लगे यहीं से आपकी महान् भावी

का बीजारोपण हुआ। विचक्षण बुद्धि, कार्य में तत्परता और जनस्वभाव की परीक्षा वगैरह से युक्त श्री रायसीभाई किसी और ही कार्य के लिये तय्यार हो रहे थे, लेकिन इसकी जानकारी केवल भावी को ही थी।

तेरह वर्ष की उम्र में उनको भी रूढ़ि के अनुसार शादी करनी पड़ी, और वे संसार के अभ्यागी हुए, तीन वर्ष सुखरूप गृहस्थवास भोगने के बाद उनकी पत्नी का स्वर्गवास हुआ। पत्नी पर नई जवानी का अथाह प्रेम होने के कारण आपको अत्यन्त शोक हुआ और इस शोक ने संसार-मोह पर प्रचण्ड प्रहार करके साधुत्व को दिशा दिखलाई। पत्नी की मृत्युके बाद अपनी एक लड़की को अपने बड़े भाई की वत्सल-छाया में रखकर माता-पिता की आज्ञा लेकर आपने संयम ग्रहण करने का निश्चय किया। प्रारम्भ में साधुत्व के आवश्यक धार्मिक ज्ञान का अभ्यास शुरू किया, और १८ वर्ष की आयु में संयम की शरण ली।

सभी को यह जानने की उत्कण्ठा होगी कि ऐसे शिष्य के भाग्यशाली गुरू कौन हैं? उनके दर्शन करने की जरूर इच्छा हुई होगी। ऐसे रत्न की परीक्षा करने वाले जौहरी-सद्गुरु कहाँ हैं? वे वृद्ध होने के कारण, साधु-सम्मेलन में नहीं पधार सके हैं। यह हम लोगों के भाग्य की न्यूनता है।

वि० सं० १९५३ ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया के दिन १८ साल की आयु में आपने दीक्षा अंगीकार की। इसके बाद श्री रत्नचन्द्रजी महाराज जैन शास्त्रों का अभ्यास करने लगे, साथ ही साथ देव-भाषा (संस्कृत) का पठन भी शुरू किया। थोड़े ही दिनों में उन्होंने अपनी तेज-बुद्धि के कारण व्याकरण काव्य, अलंकार,

व्याकरण, साहित्य न्याय और तत्त्व में कुशलता प्राप्त की। जैन तत्त्वदर्शन के सिवाय वेदान्त सांख्यादि तत्त्वों का भी आपने खूब मननपूर्वक अध्ययन किया। इस तरह आठ वर्ष तक अविश्रान्त परिश्रम करके मुनि-जीवन का प्रथम काल सार्थक किया।

युवावस्था आत्मा में रही हुई शुभ शक्तियों के विकास करने का सर्वोत्तम समय है ऐसा समझ कर गुरुवर्य पूज्य श्री गुलाबचन्द्रजी महाराज श्री रत्नचन्द्रजी स्वामी को व्याख्यान देने और प्रवचन-शक्ति का विकास करने की अनुकूलता देने लगे। श्री रत्नचन्द्रजी महाराज १[illegible] वर्ष की अवस्था में व्याख्यान और प्रवचन करने लगे।

इस तरह संसार का अनुभव, साधु अवस्था में अभ्यास, व्याख्यान-प्रवृत्ति, प्रवचनशक्ति का विकास और साथ ही साधुत्व के संयम की शान्ति का अनुशीलन मुनिश्री को लघुवय में ही प्राप्त हुआ और उनके भावी सत्कार्यों के लिए साधन बना।

मुनिश्री की जैनों के समस्त विभाग साधुओं में गिनती है। साधु-सम्मेलन को सफल बनाने का आपने शुरू से ही प्रयत्न किया था। आपने कई जगह प्रवचन दिये हैं। श्रीमान् कवि श्री न्हानालाल ने, आचार्य श्री केशवलाल हर्षदराय ध्रुव ने और बम्बई के श्री चन्दावरकर ने आपकी प्रवचन-शक्ति की प्रशंसा की है।

महाराजश्री केवल प्रवचनी ही नहीं हैं। वे संस्कृत प्राकृत और गुजराती भाषा के लेखक कवि और वक्ता भी हैं। आपके व्याख्यानों में रस ओज सरल शिक्षा भाषा हिलोर और साथ ही साथ तत्त्व विचारक की तत्त्व गुम्फी का सुमेल कैसे रहता है यह तो आपने प्रवचन देख कर जाना ही होगा।

शतावधानीजी ने लेखों व साहित्य-रचना द्वारा समाज की खूब सेवा की है। इन्होंने अभ्यासियों की सुगमता के लिये 'जैनागमशब्दसंग्रह' व 'अर्धमागधी कोष' वगैरह संस्कृत, प्राकृत गद्य-पद्यमय कई ग्रंथ तय्यार किये हैं। 'ग्रंथ अने ग्रंथकार' नामक १९३१ की दूसरी पुस्तक के पृ० ९८ में शतावधानीजी की संक्षिप्त जीवनी व उनकी कृतियों की रूपरेखा दी है। आज तक की उनकी कृतिया निम्न-प्रकार हैं :—

१	श्री अजरामर-स्तोत्र अने जीवन-चरित्र	सं० १९६९
२	कर्त्तव्य-कौमुदी भाग, १ ला	,, १९७०
३	भावना शतक	,, १९७२
४	रत्नगद्यमालिका	,, १९७३
५	अर्धमागधी-कोष, भाग १ ला	,, १९७९
६	प्रस्तार-रत्नावलि	,, १९८१
७	कर्त्तव्य-कौमुदी, भाग २ रा	,, १९८१
८	जैन-सिद्धान्त-कौमुदी	,, १९८२
९	जैनागम-शब्द-संग्रह	,, १९८३
१०	अर्धमागधी-शब्द-रूपावलि	,, १९८४
११	अर्धमागधी धातु-रूपावलि	,, १९८५
१२	अर्धमागधी-कोष, भाग २ रा	,, १९८६
१३	अर्धमागधी-कोष, भाग ३ रा	,, १९८६
१४	अर्धमागधी-कोष, भाग ४ था	,, १९८७
१५	अर्धमागधी-कोष परिशिष्ट (अप्रकट)	,, १९८८

१६ प्रेम-सिद्धान्त-कौमुदी सटीक (अप्रकट) „ ११८५
१७ रेवती-राम-समालोचना संस्कृत-निबन्ध सटीक „
१८ " " हिन्दी आवृत्ति „ १११०

० * * *

मुनि-परिचय देने के पश्चात् सुप्रसिद्ध जैन सेक्रेटरी अवधान-मैनेजिंग-कमेटी द्वारा सभा का उद्देश्य उपस्थित जन-समुदाय को सुनाया गया जिसका आशय नीचे दिया जाता है-

श्रद्धेय श्री मुनि महाराज, ताज़ीमी सरदारान जागीरदारान ओफीसरान पण्डित वर्ग तथा अन्य सभ्य गण !

आप यह देख कर विस्मय करेंगे कि एक जीवात्मा निरन्तर अभ्यास करके योग-बल की सहायता से अपनी मस्तिष्क शक्ति को कहाँ तक बढ़ा सकता है और अनेकानेक विषयों के १०० अथवा इससे अधिक जटिल प्रश्नों को अपने रोचक व्याख्यान के दौरान में एक के बाद दूसरे को सुनाकर अन्त में अपनी स्मरण-शक्ति के विलक्षण प्रताप से मौखिक-रूप में किस प्रकार सही सही उत्तर दे सकता है ॥

मैं मैनेजिंग-कमेटी की ओर से इतना आप सज्जनों से निवेदन कर देना चाहता हूँ कि आज का प्रोग्राम केवल ३॥ घंटे का है और इस समय में इस शुभावसर का पूर्ण लाभ उठाने के लिए, आप सज्जन अपने अपने स्थानों पर विराजे हुए शान्ति पूर्वक श्रवण करते तथा देखते रहें और चूँकि विषय मस्तिष्क बल से अधिक सम्बन्ध रखने वाला है, अतएव तालो इत्यादि बजाने का कष्ट न करें।

इस ३॥ घंटे के समय में श्री मुनि महाराज ने प्रश्नकर्त्ता

अपने प्रश्न करेंगे और बीच बीच में श्री मुनिराज अनेक भिन्न भिन्न विषयों पर उपदेश करेंगे । तत्पश्चात् प्रश्नकर्त्ताओं के प्रश्न का उत्तर देंगे और अन्त में स्मरण-शक्ति का विकास कैसे हो ? "How one can develop his memory !" इस विषय पर व्याख्यान देंगे । तदनन्तर प्रोग्राम के अनुसार सभापति महोदय का व्याख्यान होगा और अन्त में छोटे बालकों द्वारा शुभ कामनाकी प्रार्थना होनेके बाद सभा विसर्जित होगी ।"

*　　*　　*　　*

सेक्रेट्री के निवेदन के बाद अवधान प्रयोग प्रारम्भ किये गये जिसका विस्तृत विवरण पुस्तक में दिया गया है ।

दृष्टिदोष से भूल रह गई हो उसे कृपाकर क्षमा करें ।

योजक—

विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावना ... पृ० सं० १-२
आमन्त्रण-पत्र " ३-४
आवश्यक-सूचनायें ... " ४-५
अवधानकर्त्ता का जीवन-परिचय " ५-१०

प्रश्न और प्रश्नकार

पृष्ठ सं

मंगलाचरण १

(१) संस्कृत-अनुष्टुप्-श्लोक के प्रथम पादके अक्षरों को उत्क्रम से कहना। प्रो० रामलालजी M. A. १

(२) कथा का प्रथम-विभाग। महाराजश्री ... २

(३) चार व्यक्तियों की धारी हुई अलग २ संख्या का एक परिणाम लाने का गणित पूछना।
(१) श्री दुर्गाप्रसादजी जैन पटवारी।
(२) श्री विश्वम्भरदयालजी।
(३) डा० रामपतमलजी।
(४) डा० चौथमलजी पाखावत ... ५

(४) क्रान्त्यंश और अक्षांश पर से नतांश कहना। पं० बिहारीलालजी ज्योतिर्विशारद ६

(५) दश शब्दों का संस्कृत-वाक्य क्रम से कहना। पं० जयचन्दजी ६

(६) एक ही प्रकार के नव अङ्कवाली रकम के गुण्य और गुणक का शोधन करना। श्रीरामजी [illegible] ...

(७) प्राकृत श्लोक का संस्कृत-अनुवाद करना — पृष्ठ नं०
पं० श्रीमन्नारायणजी शास्त्री ... ७

(८) विचारे हुए नक्षत्र का शोधन करना
पं० घनश्यामदासजी ... ७

(९) सर्वांगपद कहना। श्री० महाराजश्री ... ८

(१०) छः कोष्ठकों में से विचारे हुए नाम का शोधन करना। ला० रामलालजी ... ८

(११) हिन्दी-भाषा में व्याख्यान करना
पं० ब्रजनारायणजी आचार्य ... ८

(१२) एक समान आठ अङ्कों का भागाकार करना।
पं० केदारनाथजी B. A ... ११

(१३) सन्, महीना व तारीख के कहने पर उस तारीख का वार करना। प्रो० बालाबक्सजी एम ए.एल एल बी ... १२

(१४) संस्कृत-अनुष्टुप्-श्लोक के द्वितीय-पाद के अक्षरों को उत्क्रम से कहना प्रो० रामलालजी M A ... १२

(१५) कथा का द्वितीय-विभाग। श्री० महाराजश्री ... १२

(१६) जन्म-कुण्डली पर से शुक्ल या कृष्ण पक्ष का जन्म कहना। ला० सोहनलालजी ... १६

(१७) समानान्तर पन्द्रह रकमों की जोड़ प्रथम-भाग-नव रकम। प्रो० शिवशङ्करजी M. A ... २०

(१८) दिये हुए विषय पर संस्कृत में निबन्ध-लेखन।
राज पण्डित श्री चन्द्रदत्तजी ... २०

(१९) अक्षांश और नतांश पर से क्रान्त्यंश कहना।
पं० कैलाशचन्द्रजी ... २२

पृष्ठ
(२०) मिश्र ४ प्रकार के सिक्कों की संख्या और मूल्य का शोधन करना। बा० सुमेरमलजी लोढ़ा ... २२
(२१) छः शब्दों का हिन्दी-वाक्य क्रमस में कहना। पं० प्यारेलालजी ... २३
(२२) दो मुट्ठी में रक्खे हुए मोतियों की संख्या कहना। बा० जयचन्द्रजी दुग्गड़ ... २३
(२३) संस्कृत-श्लोक का प्राकृत भाषा में अनुवाद करना। पं० रामचन्द्रजी ओझा M A L.L B ... २३
(२४) सोलह कोष्ठकों में पाँच वस्तु रक्खे हुए कोष्ठक का शोधन करना। राजपूताना-कॉलेज के विद्यार्थीगण ... २४
(२५) प्राकृत या गुजराती-भाषा में बातचीत करना। बा० छि० के० के० नायालपटी M A ... ५४
(२६) सोलह-कोष्ठकों के यन्त्र का पूर्वार्ध कहना। प्रो० बालचन्द्रजी M A L. L B ... २५
(२७) अनुष्टुप् श्लोक के तीसरे पद के अक्षरों को क्रम से कहना। प्रो० रामलालजी M A ... २६
(२८) कथा का तृतीय-विभाग। ठा० महाराजजी ... २६
(२९) छः शब्दों का प्राकृत वाक्य क्रमस से कहना श्री शान्तिलाल ३२
(३०) नव-कोष्ठक का यन्त्र बनाना। पं० रामचन्द्रजी ... ३२
(३१) जन्म-संवत्-मास-तिथि और वार का शोधन करना। बा० नयनानन्दजी B. A L. L. B ... ३३

पृष्ठ नं०

(३२) नतांश और क्रान्त्यंश पर से अक्षांश कहना।
पं० कृष्णचन्द्रजी राजज्योतिषी ... ३३
(३३) धून का रटन। श्री० महाराजश्री ३३
(३४) सोलह कोष्ठकों के यन्त्र का उत्तरार्ध।
प्रो० बालावकसजी M. A. L L B ३४
(३५) जिसके वर्ग का तफावत एक समान हो ऐसी दश पाखड़ी को गणित-योजना, पूर्व-भाग।
ला० छैलबिहारीलालजी, जनरल एकाउन्टेन्ट ३५
(३६) संस्कृत-भाषा में बातचीत करना।
पं० रामभद्रजी ओझा M. A. LL B .. ३५
(३७) गुप्त-अङ्क का शोधन करना। बा० रघुनन्दनस्वरूपजी ३६
(३८) संस्कृत-पादपूर्ति करना। पं० रामभद्रजी भट्ट व्याकरणाचार्य ३६
* (३९) चौसठ पन्ने की थोकड़ी का गणित करना।
* (४०) भारत के किसी देश की पलभा पर से उस देश का चरखण्ड कहना।
(४१) संस्कृत-अनुष्टुप्-श्लोक के चतुर्थ-पाद के अक्षरों को उत्क्रम में कहना। प्रो० रामलालजी एम० ए० .. ३६
(४२) कथा का चतुर्थ-विभाग। श्री० महाराजश्री . ३८
(४३) छः शब्दों का अंग्रेजी-वाक्य उत्क्रम से कहना।
मि० एस० पी० भार्गव M A LL. B ४८

---

* नोट:—समयाभाव से अवधान प्रयोग न हो सका।

(४४) चार आदमियों का अंगूठी-प्रयोग। पृ॰ सं॰
(१) ला॰ पूरनमलजी
(२) ला॰ धर्मसिंहजी
(३) ला॰ नेमीचन्दजी
(४) बा॰ रतनलालजी B A ... ४२

(४५) दिये हुए विषय पर नया प्राकृत-श्लोक बनाना।
पं॰ श्रीनारायणजी शास्त्री ... ४२

(४६) भारत के किसी देश की पताका पर से उस देश का परम निर्माण करना। पं॰ शिवचरणजी ज्योतिषी ... ४६

(४७) पानी के मधु का शोधन करना।

(४८) दस शब्दों का मराठी-वाक्य तत्काल में कहना।
बा॰ मि॰ के॰ के॰ नालापट्टी M A ... ४७

(४९) समानान्तर पञ्चदश रकमों की जोड़ द्वितीय-भाग का रकम। प्रो॰ शिवशङ्करजी M A ... ४७

(५०) दस शब्दों का उर्दू-वाक्य तत्काल में कहना।
वकील विनोदीलालजी जैन ... ४७

(५१) जिसके वर्णों का तत्काल एक समान हो ऐसी
दश पांचड़ी की पङ्क्ति-योजना उत्तर-भाग।
ला॰ कैलविहारीलालजी ... ४८

(५२) उपदेश ... ५०

(५३) उपसंहार ... ५२
सभापति का वक्तव्य

---

* पाठ— समयाभाव से अवधान-प्रयोग न हो सका।

शतावधानी पं० श्रीरत्नचन्द्रजी महाराज के अलवर शहर में

अवधान-प्रयोग

मङ्गलाचरण,

ॐकार बिन्दुसंयुक्त नित्य ध्यायन्ति योगिन ।
कामद मोक्षद चैव ॐकाराय नमो नम ॥ १ ॥
भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्या क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥ २ ॥

भावार्थः—काम (ऐहिक सुख) और मोक्ष को देनेवाले बिन्दुयुक्त ॐकार का योगिलोग सदा ध्यान करते हैं, उस ॐकार को नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥ १ ॥

जिनके भव-जन्ममरणरूप-ससार के बीज-अकुर पैदा करने वाले रागद्वेषादि दोष क्षय हुए हैं उनको नमस्कार हो। वह चाहे ब्रह्मा हो, विष्णु हो, हर हो या जिनेश्वर हो ॥ २ ॥

उक्त मङ्गलाचरण शतावधानी मुनि श्री शास्त्र विशारद पं० रत्न श्री रत्नचन्द्र जी महाराज ने श्रीमुख मे फरमाया । तत्पश्चात् निम्न-प्रकार अवधान प्रयोग प्रारम्भ हुए ।

ये पांच गुण जितशत्रु राजा में विद्यमान थे, इतना ही नहीं क्षत्रिय के गुण भी इनमें विद्यमान थे। संक्षेप में क्षत्रिय के गुण गीता में इस प्रकार कहे गये हैं:—

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्य युद्धे चाऽप्यपलायन ।

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्म स्वभावजम् ॥

अर्थात्—शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्ध में डटे रहना, अपलायन, दान, ईश्वरभाव ये सब स्वाभाविक क्षात्रकर्म हैं।

शौर्य-धैर्य-स्थैर्यादि गुणों की आवश्यकता व उपयोगिता जिस प्रकार व्यवहार में है उसी प्रकार धर्म में भी है। क्योंकि संयम-साधना में शौर्य-धैर्य-स्थैर्यादि गुणों की आवश्यकता रहती है। ये गुण क्षत्रियों में स्वाभाविक होते हैं। जैनधर्म के अंतिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामी क्षत्रिय थे, और उपर्युक्त क्षत्रिय गुणों से उन्होंने कर्म-युद्ध में विजय प्राप्त किया था। क्षत्रिय कभी विजय प्राप्त करने में पीछे नहीं हटते। इस पर एक ऐतिहासिक-दृष्टान्त है:—

कच्छ के राजा और मोरवी (काठियावाड़) के राजा के बीच में परम्परा से वैमनस्य चला आ रहा था। वैमनस्य बहुत बढ़ने के कारण कच्छ के वागड़ प्रान्त के कटारिया नामक गाव के समीप दोनों की सेनाओं में तुमुल युद्ध छिड़ गया।

उस समय कच्छ के रा' देसल के वीदड़ा गांव के निवासी विभाजी नामक क्षत्रिय-सम्बन्धी को सेनापति बनाया गया। युद्ध में योद्धाओं को शौर्य-प्रदान और उत्साहित करने के लिए उस समय सेना के साथ कवि भी रहते थे। कच्छ और मोरवी की सेनाओं में युद्ध ज़ोर शोर से चल रहा था। बहुत समय तक दोनों के पक्ष बराबर रहे किन्तु अन्तमें मोरवी की सेना-

ने कच्छ की सेना पर बड़े जोर से धावा किया। कच्छ-सैन्य का सेनाधिपति हिम्मत हार गया और अपनी सेनाओं को युद्ध स्थल में छोड़कर भागने लगा। उसे भागते हुए कवि ने देख लिया। कवि ने उसका पीछा करके रास्ते में विभाजी को रोका और कहा कि—

कवि—"ब्बर ! कहा हल्या ! भूख-भूख लगी पें, पानी पावता के हुक्के पीवो आप !"

अर्थात्—कहाँ चले ! क्या भूख लगी है, पानी पीना चाहते हो या चिलम पीना चाहते हो ? बात है क्या ! कहो तो सही।

विभाजी—'प तो कि नाह। पण रण में मुंझी छाती भार मन्ने नथि।

अर्थात्—मैं कुछ चाहता नहीं हूँ किन्तु इस रण-संग्राम में युद्ध करने की मेरी हिम्मत चलती नहीं है।

ये शब्द सुनकर कवि ने मार्मिक उपालम्भ देना प्रारम्भ किया:-

"भिमा ! भिमा ! तो वे भार कच्छ दे भवी।
मर्यो भर्यो कि भूराव ! पड़ न मसिए काश !"

अर्थात्—हे ! विभाजी ! कच्छ के राव देशल ने तेरे सिर पर सेना का सारा भार सौंपा है अर्थात् तुझे सेना का रक्षक बनाया है तो हे रक्षक ! आज तू अपनी सेना को छोड़ कर कहाँ भागा जा रहा है ! तुम तो आखिर क्षत्रिय हो और क्षत्रिय हो कर भागे जा रहे हो ? तेरा पुरुषत्व कहाँ चला गया ? मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि तू मर्द नहीं है। हे नामर्द ! भागने की बजाय तुझे कुएं में पड़ कर मर जाना ही उचित था।

इस तरह क्षत्रिय को उत्साहित करने के लिए कवि और भी मार्मिक उपालम्भ देने लगा—

"गजर मूरा ने डुंगरी व्या रींगणा ता रुए।
भदटे जा भकाली ! तु हत कत हुऍ ॥"

अर्थात्—हे ! सेनापति ! मालूम होता है कि तू क्षत्रिय नहीं है किन्तु वकाली-साग वेचने वाला है। रा' ङेसल ने यह गम्भीर भूल की कि तुम जैसे साग वेचने वाले को सेनाधिपति बना दिया। खैर ! हुआ सो हुआ। अब तू यहां से भाग जा क्यों कि मूली-प्याज-वेंगण आदि तेरी राह देख रहे हैं। साग की पोटली बांध कर धोदड़ा की बाजार में जा ! ओ ! वकाली ! तुम तो साग-वेचने के लिए ही योग्य हो। साग बेचना २ रणक्षेत्र में कहाँ से आ गया !

कवि के इन मार्मिक-उपालम्भ-शब्दों को सुन कर ही थिभाजी की नस-नस में क्षात्र-रक्त उबल उठा और वह तुरन्त ही वापिस लौट आया और रण संग्राम में जाकर द्विगुण-शक्ति से लड़ कर विजय प्राप्त की।

सेनापति क्षत्रिय था इसी से उनका क्षात्र-रक्त उबल उठा। निर्वीर्य-आदमी को स्वाभिमान नहीं होता है। क्षत्रिय-जाति की विशेषता ही स्वाभिमान की रक्षा करना है। इस विशेषता के कारण ही जैन-तीर्थङ्करों का जन्म क्षत्रिय-जाति में ही होता है। अस्तु।

तीसरा-अवधान

(१) श्री दुर्गाप्रसादजी जैन पटवारी, (२) श्री विश्वम्भर-दयालजी, (३) ला० रामपतमल जी जैन और (४) ला० चाँद-मलजी पालावल इन चार व्यक्तियों ने अपने मन में भिन्न २ संख्याएँ ले लीं

ने कच्छ की सेना पर बड़े ज़ोर से धावा किया। कच्छ-सैन्य का सेनाधिपति हिम्मत हार गया और अपनी सेनाओं को युद्ध स्थल में छोड़कर भागने लगा। उसे भागते हुए कवि ने देख लिया। कवि ने उसका पीछा करके रास्ते में बिभाजी को रोका और कहा कि—

कवि—"ठक्कर! कहां हल्यो? मूत्र-पुत्र लगी है, पानी पाखा के हुक्के पीवो भाव?"

अर्थात्—कहां चले? क्या मूत्र लगी है? पानी पीना चाहते हो या चिलम पीना चाहते हो? बात है क्या? कहो तो सही।

बिभाजी—"ए तो कि गौर! पण रण में मुझी छाती मार मके कवि।

अर्थात्—मैं कुछ चाहता नहीं हूं किन्तु इस रण-संग्राम में युद्ध करने की मेरी हिम्मत चलती नहीं है।

ये शब्द सुनकर कवि ने मार्मिक उपालम्भ देना प्रारम्भ किया—

"भिमा! भिमा! तो हे भार कच्छ है भणी।
मर्दे मर्दे कि मूतल! पद न भरिए पाखा!

अर्थात्—हे! बिभाजी! कच्छ के राव देशल ने तेरे सिर पर सेना का सारा भार सौंपा है अर्थात् तुझे सेना का रक्षक बनाया है तो हे रक्षक! आज तू अपनी सेना को छोड़ कर कहां भागा जा रहा है? तुम तो आखिर क्षत्रिय हो और क्षत्रिय हो कर भागे जा रहे हो! तेरा पुरुषत्व कहां चला गया? मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि तू मर्द नहीं है। हे नामर्द! भागने की बजाय तुझे कर्ता में पड़ कर मर जाना ही उचित था।

इस तरह क्षत्रिय को उत्साहित करने के लिए कवि और भी मार्मिक-उपालम्भ देने लगा—

"गाजर मूला ने तुरई ल्या रींगणा ता रा ।
भटके जा भकाली ! तु छत फत हुई ॥"

अर्थात्– हे ! सेनापति ! मालूम होता है कि तू क्षत्रिय नहीं है किन्तु बकाली–साग बेचने वाला है । राव देमल ने यह गम्भीर भूल की कि तुम जैसे साग बेचने वाले को सेनाधिपति बना दिया । खैर ! हुआ सो हुआ । अब तू यहां से भाग जा क्यों कि मूली–प्याज–बैंगण आदि तेरी राह देख रहे हैं । साग की पोटली बांध कर बीदड़ा की बाज़ार में जा ! ओ ! बकाली ! तुम तो साग-बेचने के लिए ही योग्य हो । साग बेचना ? रणक्षेत्र में कहां से आ गया !

कवि के इन मार्मिक-उपालम्भ-शब्दों को सुन कर ही बिभाजी की नस-नस में क्षात्र-रक्त उबल उठा और वह तुरन्त ही वापिस लौट आया और रण संग्राम में जाकर द्विगुण–शक्ति से लड़ कर विजय प्राप्त की ।

सेनापति क्षत्रिय था इसी से उसका क्षात्र-रक्त उबल उठा । निर्वीर्य-आदमी को स्वाभिमान नहीं होता है । क्षत्रिय-जाति की विशेषता ही स्वाभिमान की रक्षा करना है । इस विशेषता के कारण ही जैन-तीर्थङ्करों का जन्म क्षत्रिय-जाति में ही होता है । अस्तु ।

तीसरा-अवधान

(१) श्री दुर्गाप्रसादजी जैन पटवारी, (२) श्री विश्वम्भर-दयालजी, (३) ला० रामपतमल जी जैन और (४) ला० चांद-मलजी पालावत इन चार व्यक्तियों ने अपने मन में भिन्न २ संख्याएँ ले लीं

डा० मुनि श्री ने चार संख्या का एक परिणाम लाने का सब मे गणित करवाया।

चौथा अवधान

पं० बिहारीलालजी ज्योतिर्विशारद ने '१८–६ लग्नांश और २६–२१ भुजांश पर मन्नांश क्या होगा?' सो पूछा। महाराज श्री ने लग्नांश और भुजांश ध्यान में रख लिया।

इस प्रश्न का उत्तर बाद में देने को कहलाया और पाँचवाँ अवधान प्रारम्भ हुआ।

पाँचवाँ-अवधान

पं० जयचन्दजी ने छः शब्दों का एक संस्कृत-वाक्य निम्न प्रकार उत्क्रम से कहा—

६ ठा शब्द—चतुराननः।

१ ला शब्द—न।

२ रा शब्द—वक्तुम्।

३ रा शब्द—अपि।

४ था शब्द—चतुर।

५ वाँ शब्द—गुणान्।

'इन शब्दों को अनुक्रम में लगा कर वाक्य बना दीजिए'—कह कर पण्डितजी ने अपना स्थान लिया।

छठा-अवधान

श्री रामजी ओझा ने श० महाराज श्री से प्रार्थना की, कि जिसका गुणनफल ९९९९९९९९९९ ही नहीं आवें ऐसे गुण्य गुणक हैं जैसे ए। गुणे
संज्ञा वाले जीवों का भक्षण से गुण्य-गुणक रक़म लिखा ह:—
अपना जीवन-निर्वाह करते हैं।

पं०—सात्विक-आहार करने वाले मनुष्य वनस्पति खाते हैं उन में भी तो जीव हैं?

म०—जीव है भी और नहीं भी है। प्रकृति-

पं०—कैसे? संस्कृत-

म०—जो फलादि बीजरहित हैं वह निर्जीव हैं और
न हैं वह सजीव हैं।

श० मुनिश्री ने इस प्रकार संस्कृत-अनुवाद लिखवाया:—

> सर्वभूतप्रभूतस्य सम भूतानि पश्यत।
> पिहिताश्रवस्य दान्तस्य पापकर्म न बध्यते॥

आठवाँ-अवधान

पं० घनश्यामदासजी ने २८ नक्षत्रों में से एक नक्षत्र अपने मन में रखकर मुनिश्री से पूछा कि, 'वह कौनसा नक्षत्र होगा? जो मैंने मन में लिया हुआ है?' श० मुनिश्री ने पण्डितजी से गणित करवाया।

मन में लिए हुए नक्षत्र को बाद में बताने को फरमाया और नवां अवधान प्रारम्भ हुआ।

म०—जीव दो प्रकार के हैं—हिंसक और अहिंसक। सिंह, व्याघ्र, गीध आदि हिंसक-जीवों में से हैं, जो प्रतिदिन सुख-दुःख की सञ्ज्ञा वाले जीवों का भक्षण करते हैं। दूसरे अहिंसक जीव हैं जैसे दयालु मनुष्य, हरिण, कपोत आदि जो सुख-दुःख की सञ्ज्ञा वाले जीवों का भक्षण नहीं करते हुए सात्विक आहार से अपना जीवन-निर्वाह करते हैं।

पं०—सात्विक-आहार करने वाले मनुष्य वनस्पति-फलादि खाते हैं उन में भी तो जीव हैं?

म०—जीव है भी और नहीं भी है।

पं०—कैसे?

म०—जो फलादि बीजरहित हैं वह निर्जीव हैं और बीज सहित हैं वह सजीव हैं।

प०—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि में भी तो आप जीव मानते हैं सो उनकी अहिंसा अबाधितरूप से कैसे पाल सकते हैं?

म०—पृथ्वी, जलादि में अन्य धर्मावलम्बी जीव होना स्वीकार नहीं करते है लेकिन जैनधर्म उनमें भी जीव होना स्वीकार करता है। जैनधर्म पालने वाले मनुष्यों में दो वर्ग हैं, एक गृहस्थवर्ग और दूसरा मुनिवर्ग। गृहस्थवर्ग पृथ्वी आदि की हिंसा का सर्वथा त्याग नहीं कर सकता, सिर्फ त्रसजीव-द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीवों की हिंसा का त्याग कर सकता है। और पृथ्वी आदि जीवों की हिंसा का त्याग मर्यादित कर सकता है। दूसरा वर्ग मुनिवर्ग है जो सर्व जीवों की हिंसा का त्याग करके अबाधितरूप से अहिंसा का पालन कर सकता है—क्योंकि किसी जीव की हिंसा न करना, न कर-

वाना और हिंसा करने वाले को योग से न अनुमोदना करना, मन वचन और काया से इस प्रकार मुनियों का प्रथम महाव्रत है।

पं०—मुनि भी भोजन करते हैं पानी पीते हैं तो उसमें क्या हिंसा नहीं होगी ?

म०—मुनिगण सजीव वस्तु का भोजन नहीं करते हैं और सजीव पानी भी नहीं पीते। मुनि अपने लिए बनाया गया भोजन नहीं लेते हैं। वह तो गृहस्थों ने अपने लिए जो भोजन बनाया हो पानी गरम किया हो उसमें से थोड़ा-थोड़ा लेकर मधुकरी करते हैं।

पं —रास्ते में चलते समय या अन्य क्रिया करते समय तो किसी सूक्ष्म जन्तुओं की हिंसा तो अवश्य होती होगी ऐसी अवस्था में मुनि भी अबाधितरूप से अहिंसाव्रत कैसे पाल सकते हैं ?

म०—हिंसा दो प्रकार की है। एक द्रव्यहिंसा और दूसरी भावहिंसा। मारने का संकल्प करके किसी जीव को मारना वह भावहिंसा है और जीवों की रक्षा का संकल्प करके उपयोगपूर्वक चलते हुए भी अकस्मात्‌रूप से सूक्ष्म जन्तु पांव के नीचे आकर मर जाता है वहां द्रव्यहिंसा होती है। भावहिंसा नहीं क्योंकि वहां मारने की संकल्पबुद्धि नहीं है। भावहिंसा ज्यादा बंधनकारक है द्रव्यहिंसा नहीं। मुनिगण इस तरह भावहिंसा का सर्वथा त्याग करके अबाधितरूप से अहिंसाव्रत का पालन कर सकते हैं।

पं०—क्या द्रव्यहिंसा से अहिंसाव्रत का भंग नहीं होता ?

म०—द्रव्यहिंसा से अहिंसाव्रत का भंग अवश्य होता है किन्तु

बहुत ही कम और वह भी अनिवार्य है । अज्ञातरूप मे जो द्रव्यहिंसा होती है उसकी पश्चात्ताप करने मेवा प्रायश्चित्त लेने से शुद्धि हो सकती है ।

श्री दशवेकालिक-सूत्र के चतुर्थ अध्ययन में ऐसी ही शङ्का एक शिष्य ने गुरु से की हैः—

कह चरे ! कह चिट्ठे ! कहमासे ! कह सये ! ।
कह भुजतो भासन्तो पावकम्म न वधई ? ॥

भावार्थः—शिष्य की शङ्का यह है कि मैंने अहिंसाव्रत अबाधितरूप मे ग्रहण किया है किन्तु चलने समय, वैठत समय, खाते समय बोलते समय आदि क्रियाओं में अज्ञातरूप मे अनिवार्य द्रव्यहिंसा हो जाती है तो हे ! गुरुवर ! ऐसी अवस्था में चलना-वैठना-खड़े रहना, खाना, बोलना, सोना आदि क्रियाएँ कैसे करनी चाहिएँ कि जिससे मुझे पाप-कर्म का बन्ध न हो ?

गुरु ने शङ्का-निवारण में उत्तर दिया किः—

जय चरे जय चिट्ठे जयमासे जय सये ।
जय भुजन्तो भासन्तो पावकम्म न बन्धई ॥

भावार्थः—गुरु फरमाते हैं कि, हे ! शिष्य ! यत्नपूर्वक-उपयोगपूर्वक अप्रमादरूप से चलना, खाना, बैठना, सोना, बोलना आदि क्रियाएँ करने मे पाप-कर्म का बन्ध होता नहीं ।

इस तरह मुनिवर्ग अबाधितरूप मे अहिंसा का पालन कर सकता है ।

बारहवाँ-अवधान

पं० केदारनाथजी B A ने सात करोड़ सीतोतर लाख सीतोतर हजार सात से सीतोतर (७७७७७७७७)-की भाज्य

रक़म दो और महाराज श्री से भाजक रक़म और सम्पाट् बताने की प्रार्थना की।

महाराजश्री ने भाजक रक़म ३११ लिखाई और सम्पाट बाद में बताने को फरमाया।

तेरहवाँ अवधान

प्रो० बालाचन्द्रजी M. A. L. L. B अध्यापक, राजऋषि-कालेज ने शतावधानी मुनिश्री से प्रश्न किया कि सन् १९३३ के दिसम्बर मास की २६ वीं तारीख को कौनसा वार था?

उक्त प्रश्न का उत्तर बाद में देने को मुनिश्री ने फरमाया और चौदहवाँ अवधान प्रारम्भ हुआ।

चौदहवाँ अवधान

प्रो० रामलालजी M. A. अध्यापक, राजऋषि-कालेज ने संस्कृत अनुष्टुप् श्लोक के द्वितीय-पाद के अक्षरों को उत्क्रम से निम्न-प्रकार कहा—

६ ठा	— तु	७ वाँ	— च
३ रा	— च	१ ला	— पु
२ रा	— र्सा	४ था	— प
५ वाँ	— पि	८ वाँ	— मा

इन अक्षरों को ध्यान में रखकर मुनिश्री ने १५ वाँ अवधान में कथा का द्वितीय-भाग प्रारम्भ किया।

पन्द्रहवाँ-अवधान

जितशत्रु राजा बड़ा भारी विद्याप्रेमी था। उसकी राज-सभा में बहुत से विद्वान् रहते थे और बाहर से भी आते थे। उक्त विद्वान् भिन्न २ विषयों पर विचार करते थे और राजा भी उसे ध्यानपूर्वक सुनता था और नये २ शास्त्र रचने में उत्तेजना देता था। राजा के मन में प्रजा की शारीरिक नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति करने के विचार निरन्तर आया करते थे और इसके लिए साहित्य-निर्माण कराने का भी उसका विचार था।

एक समय साहित्यप्रेमी जितशत्रु की प्रशंसा सुनकर चार ऋषि अनुभवसिद्ध स्वरचित शास्त्रों को लेकर राजसभा में आये।

राजा ने स्वागत किया और पूछा कि—बतलाइए, यह कौन सा शास्त्र है ?

ऋषियों ने उत्तर दिया कि—भिन्न २ विषय पर हमारे बनाए हुए शास्त्र हैं।

अत्रि ऋषि ने कहा कि—मैंने यह एक लाख श्लोक का "वैद्यक-शास्त्र" बनाया है।

बृहस्पति ऋषि ने कहा कि—मैंने यह एक लाख श्लोक का "नीति-शास्त्र" बनाया है।

कपिल ऋषि ने कहा कि—मैंने यह एक लाख श्लोक का "धर्म-शास्त्र" बनाया है।

पाञ्चाल ऋषि ने कहा कि—मैंने यह एक लाख श्लोक का "अध्यात्म शास्त्र" बनाया है।

हमारे इस परिश्रमपूर्वक बनाये शास्त्रों को सुनने के लिए आप समय देने की कृपा कीजिए।

राजा ने कहा कि एक लाख श्लोक सुना जाए इतना समय तो मेरे पास नहीं है। इतना बड़ा शास्त्र यदि मैं सुनने बैठूं तो मुझ से राज्य का कार्य भी होना मुश्किल हो जाए। मैं तो संक्षेप में सुनना चाहता हूँ।

ऋषियों ने कहा कि हम एक लाख श्लोक का ५० हजार श्लोक में संक्षेप करें तो?

राजा ने यह बात भी स्वीकार नहीं की।

ऋषि—२५ हजार श्लोक में?

राजा—ना

ऋषि—१० हजार श्लोक में?

राजा—ना,

ऋषि—१ हजार श्लोक में?

राजा—ना

ऋषि—१०० श्लोक में?

राजा—ना,

ऋषि—१० श्लोक में?

राजा—ना

ऋषियों ने अन्त में एक श्लोक में शास्त्रों को शामिल कर के संक्षेप करने को कहा।

राजा ने कहा कि सारे शास्त्र का सार एक श्लोक में सुनाओ तो मैं सुनने को तय्यार हूँ।

ऋषियों ने कहा कि-यह बात बहुत ही मुश्किल है।

राजा ने कहा कि सार शास्त्र का तत्त्व निकाल कर एक पाद में सकलित करो।

ऋषि ने कहा कि—समय लगेगा।

राजा ने कहा कि—कितना समय ?

ऋषि ने जवाब दिया कि—१२ महीने।

राजा ने कहा कि—अच्छा १२ महीने बाद सुनाना।

इतना कहकर राजा अपने काम में संलग्न हुआ और ऋषि लोग शास्त्रों का संक्षेप करने के लिए वन में चले गए। ऋषियों को पैसों का लोभ नहीं था। परमार्थवृत्ति थी। जंगल में रह कर, अल्प आहार लेकर दिनरात ज्ञान, ध्यान में निमग्न रहा करत थे।

१२ महीने तक ऋषियों ने शास्त्रों का दोहन किया और तत्त्व निकाल कर लाख श्लोक को एक पाद में सकलित किया। और चारों ऋषि अपने २ स्थान से राजा के समीप राज-सभा में आये।

राजा ने उन को सम्मान दिया और पूछाः—'आप ने क्या किया सो कहो ?'

ऋषिगण—'एक लाख श्लोक का दोहन करके हमने तत्त्व का संकलन एक पाद में किया है।'

राजा—अच्छा, सुनाओ ?

अत्रि ऋषि खड़े होकर वैद्यक-शास्त्र का दोहन करके सकलित किया हुआ एक पाद बोलेः—

जीर्णे भोजनमात्रेयः।

अर्थात् अत्रि ऋषि का यह मन्तव्य है कि जीर्ण-पच जाने के

पात् भोजन करने में आयुर्वेदिक औषधियों की और वैद्यक शास्त्र की आवश्यकता ही नहीं है।

हे राजन्! रोग होने पर ही वैद्यक-शास्त्र की आवश्यकता रहती है। यदि रोग ही न हो तो वैद्यक शास्त्र के एक लाख श्लोक भी व्यर्थ हैं। बहुत विचार करके रोग न होने का मैंने जो रास्ता खोजा है वह है 'जीर्णे भोजनं' अर्थात् एक बार खाया वह पच कर हजम हो जाने पर खाना। इस तरह पचा पचाकर मिताहार करने से शरीर निरोगी-स्वस्थ बनता है और शरीर का आरोग्य अच्छा रहने के कारण आयुष्य में भी वृद्धि होती है।

शरीर को स्वस्थ-निरोग रखने के लिए 'जीर्णे भोजनं' अर्थात् पच जाने के बाद भोजन करना या मिताहार करना आवश्यक है वैसे ही शरीर-स्वास्थ्य बढ़ाने के लिए ब्रह्मचर्य-सेवन व्यायाम-सेवन और व्यसन-त्याग की भी अत्यावश्यकता है। वीर्य शरीर का प्राण है, बल है, शक्ति है। वीर्यधन बिना शरीर का बल आगे बढ़ नहीं सकता इसलिए शरीर की शक्ति बढ़ाने के लिए वीर्य रक्षण करना अत्यावश्यक है। वीर्यरक्षण ब्रह्मचर्य-सयम व्यायाम-सेवन और व्यसन-त्याग और मिताहार से हो सकता है।

ब्रह्मचर्य-सेवन व्यसन-त्याग और मिताहार करने से शरीर सशक्त बनता है, *शारीरिक-बल* बढ़ता है और *शारीरिक बल* से स्फुरित्व बालबल और आत्मबल बढ़ता है।

कविकुलगुरु कालिदास कहते हैं कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् धर्म की साधना करने में शरीर ही प्रधान कारण है। यदि शरीर-स्वास्थ्य अच्छा होगा शरीर शुद्ध और स्वस्थ होगा तभी धर्म का पालन अच्छी तरह हो सकेगा। जैन शास्त्र में भी कहा है कि—

सरीरमाहु नावत्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो ॥

अर्थात् शरीर नौकारूप है, जीव नाविकरूप है और संसार समुद्ररूप है जिसको महर्षि लोग तिर जाते हैं। यदि शरीरनौका ही जीर्ण-शीर्ण होगी तो जीवनाविक उसे संसार-समुद्र से कैसे पार ले जा सकता है ?

कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म-कार्य में, समाज कार्य में, राष्ट्र-कार्य में, शरीर-स्वास्थ्य के बिना उन्नति नहीं कर सकते। धर्म-सुधार, समाज सुधार, राष्ट्र-सुधार या आत्म-सुधार करने के लिए हमें शरीर-सुधार करना आवश्यक है। और शरीर-सुधार या शरीर स्वस्थ बनाने के लिए हमें मिताहार, ब्रह्मचर्य सेवन, व्यायाम-सेवन, व्यसन त्याग आदि नियमों का पालन करना अत्यावश्यक है। इन नियमों का पालन करना विद्यार्थियों के लिए तो विशेष आवश्यक है ही किन्तु गृहस्थों को भी इस विषय पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

यदि भोग-उपभोग को ही दृष्टि में रखकर खाना-पीना-मौज करना ही शरीर-धर्म माना जाय तो स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और उस अवस्था में वैद्य या आयुर्वेदिक औषधियों की आवश्यकताएँ रहती हैं।

नीतिकार ठीक कहते हैं कि 'भोगे रोगभयम्' अर्थात् भोग-उपभोग में रोग पैदा होने का भय रहता है। इसलिये जिह्वा-लोलुपता के वशीभूत होकर शरीर को बिगाड़ना ठीक नहीं है। जिह्वा की सत्ता विशेष होने के कारण उसमें संयम रखना अपना धर्म समझना चाहिए। इस विषय में एक कवि ने कहा है कि:—

"वाद मकर कविजन कहे दांत तने जो चापशे"—

हे ! जीभ ! तू स्त्री होकर दांत-पुरुष के साथ ज्यादा वाद-विवाद मत कर क्योंकि ज्यादा वादविवाद करगी तो दांत सब मिलकर तुझे पीस डालेंगे।

कवि के ये वचन सुनकर जीभ कवि को कहने लगी कि "तू भी भोंदा है,—क्योंकि मेरी सत्ता कितनी है यह तू जानता नहीं है।

'एक वचन ऐवु कहूँ के बत्रीशी भाट भागशे"—

अर्थात् हे ! कवि ! मेरी इतनी सत्ता है कि मे एक वचन म ही बत्तीसों ही दांतों को उडा सकती हूँ। दांत भले पुरुष हो किन्तु मेरी सत्ता के आगे वे बेचारे लाचार है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिह्वा की सत्ता अधिक है। यदि जिह्वा-लोलुपता के वशीभूत होकर भोग-उपभोग करना ही शरीर-धर्म माना जाय तो शरीर-स्वास्थ्य बिगड़ता जाता है और ऐसी अवस्था में वैद्य या आयुर्वेदिक औषधियों की आवश्यकता रहती है।

हे ! राजन् ! मैंने शरीर-स्वास्थ्य बनाये रखने का रास्ता सोचा है वह जीर्ण भोजन' अर्थात् पचापचाकर मिताहार करना चाहिये और भोजन को पचाने के लिए ब्रह्मचर्य्य-सेवन व्यायाम-सेवन और व्यसन-त्याग आदि की अनिवार्य आवश्यकता है यह मेरा मन्तव्य है।

सोलहवाँ-अवधान

लाला सोहनलालजी ने आपनी जन्मकुण्डली बनला कर शा० मुनिश्री मे पूछा कि:—

मेरा जन्म किस पक्ष का है

श्री॰ मुनिश्री ने जन्मकुण्डली देखी और उत्तर बाद में देने का कहा।

सत्रहवाँ-अवधान

प्रो॰ शिवरामजी M. A., अध्यापक, राजऋषि-विद्यालय ने समानान्तर १५ रकमों का जोड़ मुनिश्री से पूछना चाहा, जिनमें से नौ रकमें निम्न प्रकार की कहीं :—

१— ४२३७
२— ४६१६
३— ५ १५
४— ५११४
५— ५७४३
६— ६११५
७— ६५११
८— ६११०
९— ७२८६

इन नौ रकमों को मुनिश्री ने ख्याल में रख लिया।

अठारहवाँ-अवधान

राजपण्डित श्री चन्द्रदत्तजी शा ने 'सार्वभौम-धर्म' पर संस्कृत-निबन्ध लिखाने की विनती की। अतः मुनीश्वर ने निम्न प्रकार निबन्ध लिखाया :—

'सार्वभौमधर्मः'

' सार्वभौमधर्मो विश्वधर्मो-मनुष्यधर्मो वा।
दुर्गति प्रपतत प्राणिन धारयति स धर्म

निश्चयेन स आत्मस्वभाव वस्तुस्वभावस्यैव धर्मत्वात् । आत्मा ज्ञानमय आनन्दमय चिन्मयः । वेदान्ते यदुक्त सच्चिदानन्दमय । स एव आत्मधर्म । जैनशास्त्रे चिच्छब्देन ज्ञानचेतना दर्शनचेतना च गृह्यते ।

प्रत्येकात्मनि अनन्तज्ञानमनन्तदर्शनञ्च विद्यते अनन्तानन्दश्च । कर्मावृतत्वादयस्वभावोऽस्माभि सद्यो नोपलभ्यते । तदाविर्भावार्थमर्थात् निश्चय धर्मसच्चिदानन्दस्वरूपप्रकटीकरणार्थमहिंसासत्या स्तेयब्रह्मचर्यादिरूपव्यवहार-धर्मस्य साधन करणीयम् । अय धर्म सर्वेषु धर्मशास्त्रेषु वर्तते । अत एवाऽय विश्वधर्म सार्वधर्म इत्यर्थ ।"

हिन्दी-अनुवाद

सार्वभौम-धर्म का अर्थ विश्वधर्म या मनुष्यधर्म होता है। दुर्गति में गिरते हुए प्राणियों को बचा लेता है वह धर्म है। निश्चयरूप मे आत्म-स्वभाव ही धर्म है क्योंकि वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। आत्मा ज्ञानमय, आनन्दमय और चिन्मय, है। वेदान्त में आत्मा को सच्चिदानन्दमय कहा गया है। वही आत्म-धर्म है। जैन-शास्त्र में चित् शब्द से ज्ञानचेतना और दर्शनचेतना का व्यवहार किया जाता है।

प्रत्येक आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त-आनन्द विद्यमान है। आत्मा का यह स्वभाव कर्मों का आवरण होने के कारण प्रकट नहीं होता। आत्म-स्वभाव का आविर्भाव करने के लिए अर्थात् सच्चिदानन्दरूप निश्चय-धर्म को प्रकट करने के लिए हमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह

आदि व्यवहार-धर्मों की साधना करनी चाहिए। यह व्यवहार धर्म सब शास्त्रों में कहा गया है। इसलिए निश्चय-व्यवहाररूप धर्म ही विश्वधर्म या सार्वधर्म है।

उन्नीसवाँ-अवधान

पं० कैलाशचन्द्रजी ने २७-२० भाज्यांश और ७-१० भाजकांश पर से भागफल क्या होगा' सो पूछा।

महाराजश्री ने भाज्यांश और भाजकांश ध्यान में रख लिया।

इस प्रश्न का उत्तर बाद में देने को मुनिश्री ने फरमाया और बीसवाँ अवधान प्रारम्भ हुआ।

बीसवाँ-अवधान

बाबू फूलचन्दजी लोढ़ा ने भिन्न २ प्रकार के सिक्कों की एक थैली लाकर मु० महाराजश्री से प्रश्न की कि 'सिक्कों की संख्या और कीमत क्या है' सो बतलाने की कृपा करें।

मु० महाराजश्री ने गणित करवाया और सिक्कों की संख्या और कीमत क्या है सो बाद में फरमाने को कहा।

इक्कीसवाँ अवधान

पं० प्यारेलालजी संस्कृत-अध्यापक मिडिल-स्कूल ने कुछ शब्दों का एक हिन्दी-वाक्य क्रम से निम्न प्रकार कहा—

२ रा — मुख्य ३ रा — धर्म
५ वाँ — माता ६ ट्ठा — है
१ ला — ब्राह्मणों का ४ था — सुशिक्षा

उपर्युक्त शब्दों को अनुक्रम से रखकर वाक्य बना देने की अर्ज़ की।

श० मुनिश्री ने इसे ध्यान में रखकर वाईसवाँ अवधान प्रारम्भ किया।

बाईसवाँ-अवधान

लाला जयचन्द्रजी सुजन्ति ने अपनी दोनों मुट्ठियों में मोती छिपाकर श० मुनिश्री से पूछा कि "मोती कितने कितने हैं"?

श० मुनिश्री ने गणित करवाया और उत्तर बाद में देने को फरमाया।

तेइसवाँ-अवधान

पं० रामभद्रजी ओझा M. A. L. L. B. चीफ़ जस्टिस हाईकोर्ट-अलवर ने निम्नोक्त संस्कृत-श्लोक का प्राकृत-अनुवाद करने को कहा:—

अहो नीलोत्पलश्यामे देहबन्धैर्मनोहरे।
स्वरेण दीर्घदीर्घेण रामचन्द्र इव प्रिय॥

श० मुनिश्री ने उक्त संस्कृत-श्लोक का प्राकृत-अनुवाद इस प्रकार लिखवाया:—

यह्नो मौलुपमामीहि देरवधीहि मचोहरीहि ।
सहेश रिपरिरवेण रामचन्द्रो जयति ॥

चौबीसवाँ-अवधान

राजकुमार-कालेज के ११ विद्यार्थियों में से किसी एक विद्यार्थी ने एक वस्तु छिपा ली और श्री मुनिजी से कहा कि यह वस्तु हमारे में से किसके पास है ? सो कृपया बताइए ।

श्री मुनिजी ने विद्यार्थी के पास गणित करवाया और जिस विद्यार्थी ने वस्तु छिपा रखी है सो नाम बताने का [illegible] ।

पचीसवाँ अवधान

श्री कान्तिलाल देवचन्द [illegible] M. A. वाइस प्रिन्सिपल राजकुमार-कालेज ने श्री महाराजजी के साथ गुजराती-भाषा में निम्न-प्रकार वार्तालाप किया—

प्रि०—संसारनुं कारण शुं ?

म०—राग अने द्वेष ।

प्रि०—कर्म नहि ?

म०—कर्म ए रागद्वेष नो विस्तार छे । रागद्वेष कर्मनां बीज छे । बहु मोटुं विस्तृत वड पण तेनी सत्ता तेना एक नाना सरखा बीजमां रहेली छे तेवीरीते कर्मना बीजमां—राग द्वेषमां कर्मनो विस्तार समायो छे ।

प्रि०—कर्मबन्ध शाथी थाय छे ?

म०—विपरीत ज्ञान, इच्छा-वासना, प्रमाद, क्रोधादि कषाय-भाव अने मन, वचन अने कायानी प्रवृत्तिथी कर्म बंधाय छे ।

प्रि०—कर्मनो बन्ध केटला प्रकारे थाय छे ?

म०—कर्मनो बन्ध चार प्रकारे थाय छे । प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, रसबन्ध अने प्रदेशबन्ध । प्रकृति एटले अमुक स्वभावरूपे फल आपवानो बन्ध थाय छे । स्थिति एटले कालमर्यादा अर्थात् अमुक कर्म अमुक वखत सुधी फल आपवा रूपे स्थितिबन्ध थाय छे । रस एटले कर्म भोगवती वखते मीठाश के कड़वाश, सुख के दुःख रूपे अनुभव थाय ते रसबन्ध । अने प्रदेशबन्ध एटले कर्मपुद्गलनो समूह ।

प्रि०—कर्मो करवा के छोडवां ?

म०—वासना होय त्यांसुधी कर्मो छुटी शकता नथी । परन्तु पुरुषार्थथी अशुभकर्मो ने शुभकर्मो थी हठाववा जाइए । उपनी भूमिकाए पहोंच्या पछी शुभकर्म पण छोडवाना छे ।

प्रि०—मोक्ष शाथी थाय ?

म०—सचित कर्मोनो नाश थवाथी, प्रारब्ध भोगवी लेवाथी अने क्रियमाण कर्मने अटकाववाथी प्राचीन अने वर्तमान बन्ने कर्मोनो अभाव थवाथी जीवात्मानी मुक्ति थाय छे ।

छब्बीसवाँ-अवधान

प्रो० बालाबक्सजी M. A. LL. B. अध्यापक, राजऋषि-कालेज, ने ५४६ संख्या को १६ श्रेणियों (classes) में विभक्त करने की श्री० मुनिश्री से प्रार्थना की ।

प्र० मुनिजी ने सोलह कोष्ठों का यन्त्र-पूर्वोक्त की व्याख्यापूर्ति निम्न-प्रकार करी—

१५१	१५६	१६२	७८
८१	१५९	१५७	१५२

सत्ताइसवाँ अवधान

प्रो० रामजीलालजी M A अध्यापक राजऋषि-कालेज ने संस्कृत-अनुष्टुप् श्लोक के तृतीय-पाद के अक्षरों को उत्क्रम से निम्न-प्रकार कहा—

४ था—	स	२ रा—	प
८ वाँ—	सौ	५ वाँ—	नृ
३ रा—	ह	१ ला—	भ
६ ठा—	म	७ वाँ—	र्वो

इन अक्षरों को अनुक्रम से बताने को कहकर प्रोफेसर सा० ने अपना स्थान लिया।

अट्ठाइसवाँ अवधान

अब बृहस्पति ऋषि खड़े होकर नीति शास्त्र का दोहन करके संकलित किया हुआ दूसरा पद बोले कि—

न्यायो वृत्तिर्बृहस्पतिः

अर्थात्—बृहस्पति ऋषि का यह मन्तव्य है कि न्यायपूर्वक वृत्ति रखना ही नीति-शास्त्र का सार है।

धर्म को जीवन में मूर्त्त-स्वरूप देने के लिए हमें नीति का आश्रय लेना पड़ता है क्योंकि नीति धर्मवृक्ष की नींव है। इस तरह धर्म और नीति के बीच में पारस्परिक गाढ़ संबन्ध है। धर्म मकानरूप है तो नीति सीढ़ीरूप है। नीति की जीवन-व्यवहार में बहुत ही आवश्यकता रहती है। क्योंकि यदि नीति को जीवन-व्यवहार में स्थान न दिया जाय तो अनीति का प्रचार होता है और अनीति के कारण अन्याय, अत्याचार, अनाचार, और अधर्म की वृद्धि होती है जिस से धर्म का ह्रास होता है। इसलिए धर्म की रक्षा करने के लिए और अधर्म को दूर करने के लिए नीतिधर्म को जीवन व्यवहार में महत्व का स्थान देना पड़ता है। नीति का उद्देश्य अन्याय को दूर करना और न्याय का प्रचार करना है। अपनी नीति के इस उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए हमें अपनी कायिक, वाचिक, मानसिक प्रवृत्ति न्यायपूर्वक करनी चाहिए। क्योंकि इसलिए न्यायपूर्वक प्रवृत्ति करना ही नीति-शास्त्र का सार-तत्त्व है।

यदि भूखा मरना पड़े खाना न मिले किन्तु अन्यायपूर्वक एक कौड़ी भी स्वीकार नहीं करना, ऐसी काया की न्यायपूर्वक प्रवृत्ति करना, यह नीतिधर्म है।

यदि अनीतिपूर्ण एक वचन कहने से लाखों रुपयों का लाभ है। और नीतिपूर्ण एक वचन कहने से लाखों रुपयों की हानि होती है ऐसी अवस्था में वाचा की न्यायपूर्वक प्रवृत्ति करना, यह नीतिधर्म है।

यदि अपने प्राण का नाश होता हो तो भी दूसरे प्राणियों का मन से हित चाहना, अपने दुश्मनों का भी मन में कल्याण चाहना ऐसी मनकी न्यायपूर्वक प्रवृत्ति करना, यह नीतिधर्म है। इस प्रकार

नीति-धर्म का का पालन करना सरल नहीं है। अभिप्राय पर चलने जैसा यह नीतिमय दुष्कर है। क्योंकि प्रशंसा और निन्दा सुख और दुःख जीवन और मरण जैसे विरोधी तत्त्वों में समभावबुद्धि माध्यस्थ्यबुद्धि रखना यह नीतिपथ की प्रथम शर्त है। जो ऐसी माध्यस्थ्यबुद्धि रखने का सामर्थ्य रखता है वही नीति-धर्म का सांगोपांग पालन कर सकता है। नीतिकार ने इस विषय में ठीक कहा है कि :—

> निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
> लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
> अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
> न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात्—जो नीतिनिपुण-न्यायशील धीरपुरुष होते हैं वे कभी भी निन्दा हो या प्रशंसा हो लक्ष्मी आवे या जावे मरण आज हो या युगान्तर में इसकी परवा न कर न्याय के राहमार्ग से विचलित होते नहीं हैं।

नीति की आवश्यकता जैसे व्यावहारिक-कार्य में है वैसे ही राजकार्य और समाजकार्य में भी है। नीति के बिना राजकार्य और समाजकार्य नहीं चल सकता। राजा या समाज-सुधारक नीतिधर्म की उपेक्षा करके राज्य-सुधार या समाज सुधार कर नहीं सकते।

नीति और अनीति का प्रभाव कैसा अच्छा बुरा पड़ता है इसके लिए भोजराजा के जीवन के विषय में एक दन्तकथा है :-

एक समय भोजराजा योगी का वेश धारण कर शहर की अवस्था-व्यवस्था देखने को निकला था। भिक्षाटन करता २ वह एक गृहस्थ के घर पर भिक्षा के निमित्त गया और 'भिक्षां देहि'

कर पड़ा रहा। उस समय एक पतिव्रता युवती अपने पति को जिमाने के लिए आम्ररस निकाल रही थी। इस कारण स्त्री ने कहा कि मैं अपने पति को जिमा कर भिक्षा दूँगी। योगिराज बाहर खड़े रहे। योगिराज की दृष्टि युवती पर पड़ी। युवती का लावण्य-सौन्दर्य अद्वितीय था। सौन्दर्य देखकर राजयोगी की दृष्टि में विकार पैदा हुआ। "यह स्त्रीरत्न तो राजा के अन्तःपुर में रहना चाहिए"। ऐसा राजयोगी का विकार-भाव पैदा होते ही आम्ररस के लिए युवती जो आम्रफल घोल रही थी उसमें से रस न निकला। तब आम को सम्बोधन करके युवती उपालम्भ देने लगी कि:—

> "रे ! रे ! रसालफल मुञ्चसि किं रस नो
> आबालपालितविशुद्धपतिव्रताऽहं ।
> यन्मे मनो विचलितं न कदाऽन्यपुंसि
> जानामि भोजनृपतिं परदारलुब्धं ॥

अर्थात्—हे ! रसालफल ! तू रसपूर्ण होने पर भी क्यों रस छोड़ता नहीं है ? क्या मेरे जीवन में कुछ कलङ्क है कि जिसमे तू रस छोड़ता नहीं है ? मैं तुझे विश्वासपूर्वक कहती हूँ कि बाल्यावस्था से लेकर आजतक पतिव्रता रही हूँ। मैंने शुद्ध पातिव्रत-धर्म का पालन किया है। मेरा मन कभी भी—अरे स्वप्न में भी—पति को छोड़कर अन्य पुरुष के प्रति गया नहीं है अर्थात् मन से भी मैंने अखण्डित पातिव्रत-धर्म का पालन किया है। क्या हमारी नगरी के राजा भोज के अन्तःकरण में कोई खराब विचार आया है अर्थात् क्या वह अपना शील छोड़कर परदारा-लुब्ध होगया है और उसका प्रभाव तुम्हारे पर पड़ा है ? मुझे तो यही कारण प्रतीत होता है।

इतना कहकर युवती ने निराश होकर आम्रफल को नीचे छोड़ दिया। यह बात सुनते ही राजयोगी भोज के मन में आघात पहुँचा और सोचने लगा कि यह मैंने क्या किया? मैं प्रजा का रक्षण करने के लिए और प्रजा की व्यवस्था-अव्यवस्था का निरीक्षण करने के लिए योगी के वेश में पर्यटन कर रहा हूँ। प्रजा को पुत्र-पुत्रीवत् मानना राजा का धर्म है। मैं आज विकारवश राजा के धर्म से भ्रष्ट हुआ हूँ। इस पवित्र पुत्री पर मैंने कुदृष्टि की कि जिससे आम्रफल पर इतना असर हुआ। यदि कुकृत्य करता तो जाने क्या होता? अहो! यह मनुष्य मन और काम को धिक्कार! इस प्रकार पश्चात्ताप द्वारा और अपने आत्मा को शुद्ध करके युवती से योगिराज कहने लगा कि "हे! पुत्री! इस आम्रफल को फिर हाथ में लेकर रस निकाल।

युवती ने आम्रफल को हाथ में लिया और जरा-सा दबाया इतने में सारा पात्र आम्ररस से भर गया। और रसपूर्ण पात्र पति को दिया। युवती मन में तुरन्त समझ गई कि यह योगी के वेष में राजा भोज ही है। इन्हीं की कुदृष्टि से यह आम्रफल पत्थर-सा बन गया था और इन्हीं की सुदृष्टि से यही आम्रफल मधुर रसपूर्ण होगया। युवती अपने पति को कहने लगी कि हे! स्वामिनाथ! यह योगिराज योगी के वेष में राजा भोज ही हैं। गंगा चलकर अपने घर आई है। तो इस राजयोगी की सेवा-परिचर्या करो।

उसी समय दोनों (पति-पत्नी) ने योगिराज के पास आकर नमस्कार किया और 'महाराजश्री! आप ऐसे वेष में क्यों?' पूछा।

योगिराज ने प्रत्युत्तर दिया कि "महाराज कौन है मैं तो

योगी हूँ। युवती ने आद्यन्त बात कहकर समाधान किया कि आप महाराज ही हैं। आपका राजतेज वेश और विभूति में छुपा नहीं सकता। कवि गग ने ठीक ही कहा है कि :—

"तारे के तेज में चंद छुपे नहीं
सूर छिपे नहि बादल छाया।
रणचढ़या रजपूत छुपे नहीं
दाता छुपे नहीं घर मंगन आया॥
चंचल नार के नैन छुपे नहिं
प्रीति छिपे नहि पुठ दिखाया।
कवि गग कहे सुन शाह अकबर!
कर्म छुपे न भभूत लगाया॥

भोजराजा ने योगीवेश धारण करने की बात स्वीकार की। और युवती को अपनी धर्मबहिन स्वीकार कर सन्मान किया।

नीति और अनीति का अच्छा-बुरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। यदि भोजराजा की दृष्टि इस प्रकार विकृत न हुई ह तो तो इस प्रकार होता ही नहीं "दृष्टि वैसी सृष्टि" यह लोकोक्ति सत्य प्रतीत होती है। राजा की कुदृष्टि और सुदृष्टि का प्रभाव आम्रफल पर भी पड़ा।

नीति—न्यायपूर्वक प्रवृत्ति—की जाय तो आत्महित के साथ दूसरों का भी हित होता है।

सद्वर्त्तन, सद्विचार और सद्व्यवहार यह न्यायपूर्वक मन, वचन और काया की प्रवृत्ति है इसलिए यही नीति-शास्त्र का सार है ऐसा बृहस्पति का मन्तव्य है।

उन्तीसवाँ-अवधान

श्री शान्तिलाल ने छः शब्दों का एक प्राकृत-वाक्य निम्न-प्रकार व्युत्क्रम से कहा—

५ वाँ शब्द—	संजमो
३ रा शब्द—	मुक्किट्ठं
१ ला शब्द—	धम्मो
४ था शब्द—	अहिंसा
६ ठा शब्द—	तवो
२ रा शब्द—	मंगल

'इन शब्दों को अनुक्रम से जमाकर वाक्य बना दीजिए' कह कर प्रश्नकार ने अपना स्थान लिया।

तीसवाँ-अवधान

पं० रामचरणजी अध्यापक, संस्कृत-पाठशाला ने २०४ संख्या का नव कोष्ठक वाला यन्त्र बनाने के लिये प्रार्थना की।

श० मुनिश्री ने निम्न प्रकार में यन्त्र भरने को फरमाया—

२०४	२०४	२०४	२०४	२०४
२०४	७१	६४	६९	२०४
२०४	६६	६८	७०	२०४
२०४	६७	७२	६५	२०४
२०४	२०४	२०४	२०४	२०४

इकतीसवाँ-अवधान

बा० नयनानन्दजी B A L L B ने अपने जन्म का साल, मास, तिथि और वार बताने को श० मुनिश्री से प्रार्थना की।

श० मुनिश्री ने गणित करवाया और उत्तर बाद में देने को फरमाया।

बत्तीसवाँ-अवधान

पं० कृष्णचन्द्रजी राजज्योतिषी ने "४६ नतांश और २० क्रान्त्यंश पर से अक्षांश क्या होगा" सो पूछा। महाराजश्री ने नतांश और क्रान्त्यंश ध्यान में रख लिया। उक्त प्रश्न का उत्तर बाद में देने को मुनिश्री ने फरमाया और तैंतीसवाँ अवधान प्रारम्भ हुआ।

तैंतीसवाँ-अवधान

तत्पश्चात् श० महाराजश्री के मुखारविन्द से निम्न अध्यात्म-पद की ध्वनि ५ मिनिट तक सभा में गूंजती रही और नीरव शान्ति फैल गई —

ॐ बोलो, ॐ बोलो, ॐ बोलो, भाई !
ॐ बोलो, ॐ बोलो, ॐ बोलो, भाई !
ॐ बोलो, ॐ बोलो, ॐ बोलो, भाई !

× × ×

जय जय तत्व-ज्ञान सद्गुरु ।
जय जय आत्म-भान सद्गुरु ॥

× × ×

मरेंगे मरेंगे मरेंगे हम प्रभु ! तेरे भजन में मरेंगे हम ।
धरेंगे धरेंगे धरेंगे हम प्रभु ! तेरे चरण सीस धरेंगे हम ॥

× × × × ×

ॐ शान्ति ॐ शान्ति ॐ शान्ति

चौंतीसवाँ-अवधान

प्रो० माताप्रसादजी M A L. L. B. अध्यापक, राज ऋषि कालेज ने ५५२ संख्या को १६ श्रेणियों (Classes) में विभक्त करने की श० मुनिजी से प्रार्थना की।

श० मुनिजी ने सोलह कोठों का पन्न-उत्तरार्थ की आशा-पूर्ति निम्न-प्रकार की—

१५३	१५६	१६२	७८
८१	१५५	१५७	१५९
१५२	१५४	७५	१६१
१६	८०	१५१	१५८

पैंतीसवाँ-अवधान

लाला ईश्वरीलालजी, जनरल-एकाउन्टेन्ट ने जिसके दोनों का फर्क १०३२ आवें ऐसी दस पोलड़ी में भरने की दश रकम लिखाने की श्री० मुनिश्री ने प्रार्थना की।

प्रथम जोड़ी—२५७—२५६
द्वितीय जोड़ी—१२७—१३१
तृतीय जोड़ी— ८३— ८६
चतुर्थ जोड़ी—६०॥— ६८॥
पञ्चम जोड़ी— ३७— ४६

छत्तीसवाँ-अवधान

पं० रामभद्रजी ओझा M A. L L B. चीफ-जस्टिस हाईकोर्ट-अलवर, ने महाराजश्री से संस्कृत-भाषा में निम्न-प्रकार वार्तालाप किया:—

ओझाजी—सामान्यधर्मे पालिते सति विशेष-धर्मस्याऽवश्यकताऽस्ति न वा?

महाराजश्री—सामान्यधर्मशब्दस्य सर्वधर्मेषु यत्सामान्यतत्त्वमहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्यसन्तोषदमादमादय इत्येवमर्थः स्यात्। विशेषधर्मशब्दस्य साम्प्रदायिकचिह्नानि वा तत्तत्क्रियाविशेष इत्यर्थः स्यात्। एवञ्च सामान्यधर्मः प्रधानतया स्वीकरणीयः विशेषधर्मश्च गौणतया।

ओझाजी—तर्हि विशेषधर्मस्यावश्यकता नास्ति?

महाराजश्री—तदप्येकान्तेन वक्तुं न शक्यते। विशेष-

धर्मो यदि सामान्यधर्मपोषकस्तर्हि स आदरणीयः स्यात् सामान्य-धर्मघातकश्चेदनादरणीयः स्यात्।

सोमश्री—किं विशेषधर्मं विना केवलसामान्यधर्मेणैव कार्य-सिद्धिर्भवति ?

महाराजश्री—भवत्येव। श्वेताम्बराचार्यस्येदं वचनं श्रूयताम्।

"आसम्बरो न सेअम्बरो न
बुद्धो वा अहव अन्नो वा।
समभावभावियप्पा
लहई मुक्खं न संदेहो॥"

अर्थात्—दिगम्बरः स्याद्वा श्वेताम्बरः। बौद्धो अन्यतमो वा भवेत्। यदि स समभावपरिनिष्ठितः स्यात् तर्हि स मोक्षं लभेत। मोक्षप्राप्तौ साम्प्रदायिकत्वरूपविशेष-धर्मस्य कारणत्वं न दर्शितमपितु समभावरूपसामान्यधर्मस्यै-वावश्यकत्वं प्रतिपादितमित्यवगतं विस्तरेण।

हिन्दी अनुवाद

सोमश्री—सामान्य धर्म का पालन करने पर विशेष-धर्म के पालन की आवश्यकता है या नहीं ?

महाराज श्री—सामान्य धर्म शब्द का सब धर्मों में अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य सन्तोष क्षमा, त्यागादि सामान्य अर्थों में व्यवहार होता है। और विशेष-धर्म का साम्प्रदायिक-चिन्हों या क्रिया-विशेष के अर्थ में व्यवहार होता है। इसलिए सामान्य धर्म प्रधानतया और विशेष-धर्म गौणरूप से स्वीकरणीय है।

सोमश्री—तब क्या विशेष-धर्म की आवश्यकता नहीं है ?

महाराजश्री—एकान्तरूप से यह भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि विशेषधर्म यदि सामान्यधर्म का पोषक है, तो यह आदरणीय-आचरणीय है। यदि सामान्य-धर्म का घातक हो तो वह आदरणीय-आचरणीय नहीं है।

ओझाजी—तो क्या विशेष धर्म के विना सामान्य-धर्म का पालन किया जाय तो कार्य सिद्धि हो सकती है?

महाराजश्री—हो सकती है। जैनाचार्यों का इस विषय में निम्नोक्त वचन सुनने योग्य है—

"आसवरो वा सेयवरो य बुद्धो वा अहव अन्नो वा।
समभावभावियप्पा लहइ मुक्खं न संदेहो"॥

अर्थात्—दिगम्बर हो या श्वेताम्बर हो, बौद्ध हो या दूसरा कोई धर्मावलम्बी हो शैव हो या वैष्णव हो किन्तु यदि उसकी आत्मा समभाव से भावित है तो वह अवश्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

मोक्ष-प्राप्ति में आचार्यों ने साम्प्रदायिक रूप विशेष-धर्म को कारणभूत नहीं बताया है किन्तु समानभावरूप सामान्य-धर्म की ही आवश्यकता बताई है। अस्तु।

सैंतीसवाँ अवधान

बा० रघुनन्दनस्वरूपजी ने अमुक रक़म को २७ से गुणा करके गुणाकार रक़म में से एक आंक छिपाकर शेष संख्या बताई। इसमें कौनसा आंक छिपाया है सो बताने की मुनिश्री से प्रार्थना की।

मुनिश्री ने उक्त प्रश्न को ध्यान में रखकर उत्तर बाद में देने को कहा।

अड़तीसवाँ-अवधान

पं० रामचन्द्रजी भट्ट व्याकरणाचार्य ने संस्कृत-पादपूर्ति के लिए निम्नलिखित चतुर्थ चरण दिया कि—

'तमसं जानीत विज्ञाः'

श्री० मुनिश्री ने निम्न-प्रकार संस्कृत-पादपूर्ति की:—

आर्यावृत्तम्

न ज्ञातं स्थावरके यो तिरश्चि नरकेऽपि वा।
लब्धे सम्प्रं नृत्वे, 'तमसं जानीत विज्ञाः' ॥

भावार्थ—हे विद्वानों! स्थावर—पृथ्वी पानी अग्नि वायु और वनस्पति अवतार में जिस आत्मा को जाना नहीं है—और नरक और तिर्यंच पशु पक्षी के अवतार में भी जिसको जाना नहीं है इस समय मनुष्य का अवतार प्राप्त हुआ है तो उस आत्मा को परिपूर्णतया जानो।

उन्तालीसवाँ-अवधान

प्रश्नकार उपस्थित न होने के कारण अवधान न हो सका।

चालीसवाँ-अवधान

प्रश्नकार उपस्थित न होने के कारण अवधान न हो सका।

इकतालीसवाँ-अवधान

प्रो० रामलालजी M. A. अध्यापक, गवर्न्मेंट-कालेज, ने संस्कृत-अनुष्टुप-श्लोक के चतुर्थ पाद के अक्षरों को उत्क्रम से निम्न प्रकार कहा:—

३ गा — रे	४ था — व
७ र्वा — त	६ त्रु — श
५ वा — नि	२ रा — पि
१ ला — र	८ र्वा — मः

इन अक्षरों को अनुक्रम से बनाने को कह कर प्रोफेसर ने अपना स्थान लिया।

ब्यालीसवाँ-अवधान

अब कपिल ऋषि खड़े हुए और अपने रचे हुए धर्म-शास्त्र का एक पाद में संकलित किया हुआ सार-तत्त्व राजा को सुनाने लगे।

'कपिलः प्राणिनां रक्षा'

अर्थात्—कपिल ऋषि का यह मन्तव्य है कि प्राणियों की रक्षा करना ही धर्मशास्त्र का सार-तत्त्व है। क्योंकि धर्म का उद्देश्य सुख प्राप्त कराना और दुःख से बचाना है। सारा संसार दुःख से आर्त्त है। पशु, पक्षी, मनुष्य, गाय-भैंस आदि कीड़ो से कुञ्जर तक सब ही जीव सुख चाहते हैं। दुःख सब को अप्रिय है। शास्त्रकार भी कहते हैं कि:—

"सव्वे जीवा पियाउया, सुहसाया, दुक्खपडिकूला, अप्पि-

में किसी जगह आनन्द-मझाका आस्वाद किया हो तो मुझे भी
बता दे कि जिसमें मैं भी आनन्द का उपभोग कर सकू।

जगत में आनन्द ढूढते हैं तो नहीं मिलता बादशाहों के महलों में, नहीं मिलता गरीबों की झोपड़ी में, नहीं दिखाई देता अधिकारियों के अधिकार में, न गुलामों की गुलामी में, न साहूकारों की हवेली में, न किसानों के छप्पर में। इस दुनिया का स्वभाव ही ऐसा दिखाई देता है कि किसी को सुख और किसी को दु:ख। कहा भी है कि:—

"तन्तु काचा तणो ताणो ससार छ, मावीए मात त्या तेर तूटे।
शरीर आरोग्य तो योग्य स्त्री होय नहीं, योग्य स्त्री होय खोराक खूटे।
होय खोराक न होय सतान उर, होय सतान रिपु लाज लूटे।
कोई जो शत्रु नहि होय दलपत कहे ममीप सम्बन्धीनुं शरीर छूटे।

अर्थात्—कच्चा धागा के समान ससार है कि जिसको सात दफे साधते हैं तो तेरह दफे टूटता है। जैसे शरीर-स्वास्थ्य अच्छा हो तो योग्य स्त्री का सहचार मिलता नहीं है। यदि योग्य स्त्री का सहचार मिलता है तो भोजन पर्याप्त मिलता नहीं है। यदि भोजन पर्याप्त मिलता है तो सतान की प्राप्ति होती नहीं है। यदि सन्तान की प्राप्ति होती है तो दुश्मन की तर्फ से संताप होता है। इस तरह किसी न किसी तरह थोड़ा-ज्यादा दुःख होता है। यदि भाग्यवश शरीर स्वस्थ हो, योग्य स्त्री का सहचार मिला हो, भोजन पर्याप्त मिलता हो, सतान का सुख हो, दुश्मन की तर्फ से संताप न हो तो अन्त-में दलपत कवि कहते हैं कि स्नेही वा सम्बन्धी-जन के वियोग का दुःख आ जाता है।

ऐसे दुःखमय संसार में आनन्द के अमृतरूप प्रवाह जो कोई हो तो वह धर्म है। धर्म ही आपत्ति से आत्मा का रक्षण करता है। क्योंकि—

"धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा। लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति धर्मेण पापमपनुदति। धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं। तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति। —यजुर्वेद तैत्तिरीयारण्यक

अर्थात्—धर्म ही जगत के प्राणियों के लिए आधाररूप है। जगत में लोग धर्म क्या है और अधर्म क्या है यह जानने के लिए धर्मिष्ठ मनुष्य के पास जाते हैं। धर्म से पाप दूर होता है। और धर्म में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है इसलिये धर्म ही परम तत्त्व माना गया है। जो धर्म मानव जीवन के लिए शरण रूप है जो धर्म मानव-जीवन के लिए एक मात्र सुख-शान्ति का केन्द्रस्थान है, जो धर्म मानव जीवन की विषमताओं को दूर कर समानता का आदर्श उपस्थित करता है वह धर्म कौन सा है? यह प्रश्न उपस्थित होता है। यह धर्म दया का धर्म है रक्षा का धर्म है अहिंसा का धर्म है।

कवि तुलसीदासजी ने धर्म का स्वरूप बतलाते हुए ठीक ही कहा है कि—

> दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान।
> तुलसी दया न छोड़िए जब लग घट में प्राण॥

अर्थात्—दया प्राणियोंकी रक्षा करना ही धर्म का मूल-सार तत्त्व है और अभिमान ही पाप का मूल है। इसलिए जबतक शरीर में प्राण है शक्ति है तब तक दया-धर्म का आचरण कर

लेना चाहिए। शास्त्रकार भी इसी बात को बार-बार फरमाते हैं कि:—

जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढई।
जाविंदिया न हायंति ताव धम्मं समायरे॥

॥ श्री उत्तराध्ययन सूत्रम् ॥

अर्थात्—जब तक जरा-वृद्धत्व से पीड़ा होती नहीं हो और जब तक व्याधि बढी हुई न हो और जब तक इन्द्रियाँ शिथिल हुई न हों तब तक में धर्म का आचरण कर लेना चाहिए।

सोक्रेटीस का कथन है कि इस संसार में जब दया-धर्म का साम्राज्य होगा तब यह दुःखमय संसार स्वर्गसमान सुखमय हो जावेगा।

भागवत के तृतीय स्कन्ध के २६ वें अध्याय के २१ और २२ वें श्लोक में कहा है कि:—

अहं सर्वेषु भूतेषु, भूतात्मावस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चा विडम्बनम्॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु, सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वाऽर्चां भजते मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोति सः॥

कपिलजी अपनी माता देवहूति को कहते हैं कि—सर्वभूत-प्राणी में आत्मरूप से मैं रहा हूँ। मूढात्मा एक तरफ जीवों में रहा हुआ मेरी अवज्ञा करते हैं और दूसरी तरफ अर्चा-पूजा करते हैं। यह एक प्रकार की विडम्बना है। इस तरह जो आत्म-स्वरूप को छोड़ कर मात्र मूढ़ता से ब्रह्म पूजा करता है, वह भस्म (राख) में होम करता है।

इस का सारांश यह है कि प्राणीमात्र में ईश्वर का अंश-आत्मा एक-सा है। प्राणीमात्र का हित करना, किसी का अहित न करना यही ईश्वर-पूजा है। खुद ईश्वराभिमुख होना और औरों को भी ईश्वराभिमुख बनाना ही ईश्वर पूजा है।

कपिलजी ऋषि कहते हैं कि जब मैंने एक लाख श्लोक के धर्मशास्त्र में धर्मों का दोहन किया तब मुझे मालूम हुआ कि सब धर्मों का मूल दया—प्राणी-रक्षा ही है। क्योंकि—

"दयाधर्मनदीतीरे सर्वे धर्मास्तृणाङ्कुराः ।
तस्यां शोषमुपेतायां कियन्नन्दन्ति ते चिरम् ॥"

अर्थात्—दयाधर्मरूप नदी के तीर पर सत्य-संतोष आदि धर्मों तृणांकुररूप उग निकले हैं। दयाधर्म का शोष हो जाने पर सत्य-संतोष आदि धर्मों का पोषण नहीं होता है।

एक दयाधर्म का परिपूर्ण पालन करने से सत्य-संतोष आदि सब धर्मों का पालन स्वतः हो जाता है। यदि दयाधर्म का पालन न हुआ तो सत्य-संतोष प्रभृति सब धर्म शुष्क हो जाते हैं। इसलिए—

'कपिल प्राणिनां दया'

अर्थात्—कपिल ऋषि ने प्राणीरक्षा-दया को ही धर्म शास्त्रों का जो साररूप कहा है सो ठीक ही है।

इक्कीसवाँ अवधान

मि० एस० पी० भार्गव M A L L B प्रिन्सिपल

राजऋषि कालेज ने छः शब्दों का एक अंग्रेजी वाक्य निम्न-प्रकार उत्क्रम में कहाः—

५ वां शब्द—Meet
२ रा शब्द—Willing
४ था शब्द—Shall
६ ट्ठा शब्द—Again
३ रा शब्द—We
१ ला शब्द—God

'इन शब्दों को अनुक्रम में जमा कर वाक्य बना दीजिये' कहकर प्रश्नकार ने अपना स्थान लिया।

चौवालीसवाँ-अवधान

लाला गूजरमलजी, लाला धर्मसिंहजी, लाला नेमीचन्दजी, बा० रतनलालजी बी० ए०, इन चार सज्जनों के बीच में अंगूठी को छिपाने का प्रयोग किया गया।

श० मुनिश्री ने गणित करवाया और उत्तर बाद में देने को फरमाया।

पैंतालीसवाँ-अवधान

प० श्रीमन्नारायणजी, संस्कृत अध्यापक, राजऋषि कालेज ने प्राकृत-पादपूर्ति के बजाय संस्कृत-पादपूर्ति के लिए निम्न-लिखित चतुर्थ-पाद दिया किः—

"वज्राहतेवा इव यादिसोऽपि"

मु० महाराजश्री ने निम्न-प्रकार संस्कृत-पादपूर्ति की:—

उपजाति

अस्यां सभायां जयसिंह भूपः सह समेयात् यदि वास्तुपाले ।
अपूर्व तदा तं मुदिताः समेयुः 'वज्राहतेवा इव यादिसोऽपि' ॥
इयं यदा मानवधर्मसीम्नि, प्राप्ता मनोऽन्येऽपमसा नितान्तं ।
दिदृक्षवस्तां त्रिदशाः समेयु "वज्राहतेवाऽव यादिसोऽपि" ॥

भावार्थः—यदि इस सभा में जयसिंह राजा वास्तुपाल में बैठ कर अभी ही आवें तो उन्हें देखने के लिए प्रसन्न हुए वृक्ष भी मानों सचेत होकर आवें ।

यदि यह सभा मानव धर्म की सीमा को मन में—हृदय में प्राप्त करें तो इस सभा को देखने की इच्छा वाले देवता और वृक्ष भी मानों सचेत होकर आवें ।

छियालीसवाँ-अवधान

पं० शिवचरणजी ज्योतिषी ने सात अंगुल और तीस अंगुल पलभा पर से परम दिनमान बतलाने की प्रार्थना की ।

मु० मुनिश्री ने उत्तर बाद में फरमाने को कहा ।

सैंतालीसवाँ-अवधान

प्रश्नकार उपस्थित न होने के कारण अवधान न हो सका ।

अड़तालीसवाँ-अवधान

श्री कान्तिलाल केशवलाल नानावटी M. A वाइस प्रिन्सपल, राजऋषि कालेज ने छः शब्दों का एक मराठी वाक्य निम्न-प्रकार उत्क्रम में कहाः—

४ था शब्द—विचार
६ ठा शब्द—आहे
१ ला शब्द—मी
३ रा शब्द—पुष्कल
२ रा शब्द—त्याबद्दल
५ वाँ शब्द—केला

'इन शब्दों को अनुक्रम में जमा कर वाक्य बना दीजिए'—कहकर प्रश्नकार ने अपना स्थान लिया।

उनचासवाँ-अवधान

प्रो० शिवशङ्करजी M A अध्यापक, राजऋषि-कालेज ने ,सत्तरहवाँ अवधान की शेष छः रकमें इस प्रकार बतलाईः—

१०—७४६८
११—७६४७
१२—७८२६
१३—८००५

१४—८०८४

१५—८३६३

उक्त छः रकमें मुनिश्री ने ध्यान में रख ली और १५ रकम का जोड़ बाद में बतलाने को कहा।

पचासवाँ-अवधान

लाला किशोरीलालजी जैन वकील ने छः शब्दों का एक उर्दू-वाक्य निम्न-प्रकार क्रम से कहा—

२ रा शब्द—हैरत

६ ठा शब्द—मज़ीद

४ था शब्द—और

१ ला शब्द—पाबस्ता

३ रा शब्द—अंगेज़

५ वाँ शब्द—दिमाग

'इन शब्दों को अनुक्रम से जमाकर वाक्य बना दीजिए'—कहकर प्रश्नकार ने अपना स्थान लिया।

इक्यावनवाँ-अवधान

लाला प्रेमबिहारीलालजी असिस्टेंट-एकाउन्टेन्ट ने महाराजश्री से पाँच जोड़ी को दस पांखड़ी पर लिखवाने की प्रार्थना की।

स पर श० महाराजश्री ने निम्न प्रकार हिन्दी और अंग्रेजी अङ्क
र सख्या लिखवाई:—

उपदेश

अध्यात्म शास्त्र का सार—'साम्यभावना'

'पाश्चात्य साम्यभावना'
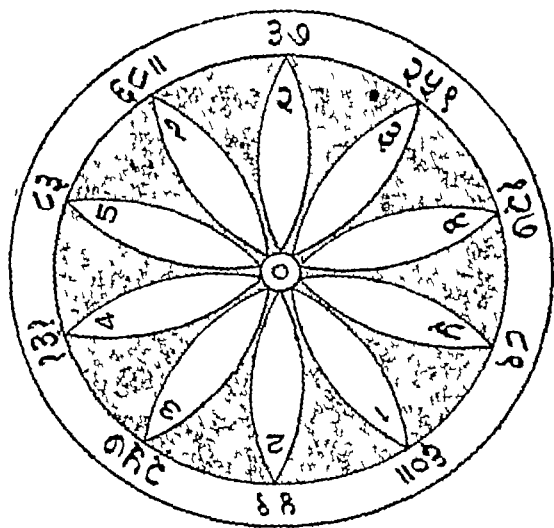
पाद्यात्म-सूरि ने अध्यात्म शास्त्र पर जो पुस्तक-रचना की थी उसका सार-तत्त्व एक पद में जो लिखा था वह 'साम्य-भाव' था। इस पद में सब धर्मावलम्बियों को—यहाँ पर उपस्थित सब सज्जनों को—समझने का है। क्योंकि जहाँ तक साम्यभावना का रहस्य मन में उतरता नहीं है वहाँ तक दृष्टिवैषम्य-दोष दूर नहीं होता। जब तक दृष्टिवैषम्य रहता है तब तक वस्तुस्वरूप की पहचान नहीं होती और जब वस्तुस्वरूप की पहचान होती नहीं है तब तक गुणग्राहकता नहीं आती और इस कारण वहाँ दोषों में गुणों का आरोपण और गुणों में दोषों का आरोपण करके ये धर्मों में भी संघर्ष पैदा करते हैं। इसी वैषम्यभाव से धर्म के नाम पर मनुष्यों की हत्या की गई है। एक ही समाज के अनेक टुकड़े किए गये हैं। भाई-भाई के बीच में परस्पर द्वेष-भाव पैदा किया गया है।

भारत में भी एक जमाना ऐसा था कि जिसमें एक धर्मवाला दूसरे धर्मवालों पर आक्रमण करता था। शैव वैष्णवों का विश्वास नहीं करते और वैष्णवों शैव से दूर भागते थे। जैन सनातनियों से दूर भागते थे और सनातनी जैनों को नास्तिक कह कर नहीं मिलते थे।

'हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम् ।'

ऐसे वाक्य भी प्रचलित हुए थे। अब सद्भाग्य से और ज्ञान के प्रचार से वह जमाना चला गया है।

आज की सभा का दृश्य से ही साम्यभावना के जमाना का रंगढंग प्रतीत होता है।

यहाँ पर एकत्रित हुए भिन्न-भिन्न ज्ञाति और भिन्न-भिन्न धर्म के पालने वाले के मुख-मुद्रा पर साम्य-भाव की झलक देखकर किसके मन में प्रमोद-भाव उत्पन्न न होगा!

साम्य-भाव ही आत्मिक-विकास का प्रवेशद्वार है। और आत्मिक दृष्टि से ही वह उत्पन्न होता है। क्योंकि भिन्न भिन्न व्यक्तिओं के शरीर, इन्द्रिय, सम्पत्ति आदि में भेद होने पर भी आत्मतत्त्व में भेद नहीं है। वहाँ न तो जातिभेद है, न है लिंगभेद।

जैन शास्त्र में कहा है कि "आयाओ बहिया पास"।

अर्थात्—जिस तरह सुख या हित दृष्टि से अपने को देखना है उसी दृष्टि से दूसरे प्राणियों के प्रति भी देख।

गीता में कहा भी है कि:—

> आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
> सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

अर्थात्—हे! अर्जुन! जो 'आत्मवत् सर्वभूतेषु'—अपने समान सब प्राणियों को सुख और दुःख में समभाव से देखता है वही परम योगी है।

नीतिकार कहते हैं कि—

> अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
> उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

अर्थात्—संकुचितबुद्धिवालों को 'यह मेरा है' यह दूसरों का है' ऐसी गणना होती है किन्तु उदारबुद्धिवालों की दृष्टि में सारी दुनियाँ ही अपना कुटुम्ब है।

आजकल धर्म का स्थान सम्प्रदाय-बुद्धि ने लिया है और इसी कारण धर्म के बजाय पन्थ और सम्प्रदाय का प्रचलन ज्यादा हो गया है। पन्थभावना या सम्प्रदाय-भावना से धर्म का वास्तविक-स्वरूप विकृत होगया है और धर्म विकृत होजाने के कारण धर्म में से विश्वभावना मैत्री-प्रमोद-करुणा-माध्यस्थ-भावना लुप्त हो गई है।

जो धर्म परस्पर प्रेम भाव प्रकट करके समस्त देश अखिल भारत को ऐक्य शृंखला में जोड़ सकता है वही धर्म सम्प्रदाय-भेद पन्थभेद से परस्पर क्लेश जगा कर एक अखण्ड देश व समाज को छिन्नभिन्न कर देता है। प्रत्येक धर्म में अनेक सम्प्रदाय हो गए हैं। वे परस्पर स्थापन-उत्थापन की प्रवृत्ति में पड़ कर सत्य कर्तव्य से दूर हो गए हैं।

इस विषम-परिस्थिति में आत्मविकास तो दूर रहा परन्तु ऐहिक प्रगति भी रुक गई है। अब समय को पहचान कर कलह भय पुरानी प्रथा को तिलांजलि देकर प्रेमभाव-समानभाव को अवकाश देना चाहिए। इस तरह जैसे २ अपनी आत्मिक-शक्ति विकसित होती जाती है वैसे २ अपना सत्य भाव का क्षेत्र विशाल और विस्तृत बनता जाता है। जब आत्मा को महत्

विभूति अर्थात् महापद प्राप्त होता है तब गांधीजी की तरह प्राणीमात्र को अपना आत्मभाव का क्षेत्र विस्तीर्ण बना सकता है।

प्रत्येक आत्मा ने अनन्तबार संसार में जन्म-मरण धारण किया है और प्रत्येक जीव के साथ माता-पिता-भाई-मित्र रूप से सम्बन्ध जोड़ा है। सारी दुनियां में ऐसा कोई जीव नहीं है जहां जीव ने माता पिता भाई मित्र के रूप में सम्बन्ध न किया हो। इस दृष्टि से देखने पर भी अपना कर्त्तव्य है कि प्राणीमात्र को बन्धुभाव से, मित्रभाव से देखें।

जैनों का यह अभ्यास पाठ है कि —

'खामेमि सव्वे जीवा, स वे जीवा वि खमंतु मे।
मित्ति मे सव्व भूएसु वेरं मज्झं न केणई॥

अर्थात्—मैं प्राणी मात्र को क्षमा करता हूँ और प्राणीमात्र मुझे क्षमा प्रदान करें। सर्व जीवमात्र से मेरा मैत्री-भाव है मुझे किसी के साथ वैरभाव नहीं है।

परमेश्वर को या ख़ुदा को सृष्टिकर्त्ता मानने वालों का भी यही कर्त्तव्य है कि प्राणी मात्र का पिता परमेश्वर या ख़ुदा है तो प्राणीमात्र परमेश्वर के पुत्र या ख़ुदा के बन्दे हैं तो उनमें परस्पर भाई मित्र का सम्बन्ध रखना चाहिए। इस दृष्टि से भी भ्रातृभाव या समान-भाव का पोषण करना चाहिए। यही अध्यात्म-शास्त्र का रहस्य—परमार्थ है। इस लिए पाञ्चाल ऋषि ने अध्यात्मशास्त्र का दोहन करके जो सार तत्व निकाला वह साम्य-भावना या भ्रातृ-भावना है।

उपसंहार

समय अधिक हो गया था प्रश्नों के उत्तर सुनने की सभाजनों की तीव्र उत्कण्ठा बढ़ रही थी। अतः महाराजश्री ने अवधानों का उपसंहार करते हुए फरमाया कि—

आज आपके समक्ष जो अवधान के प्रयोग किये गये हैं, वो न मन्त्रसाध्य हैं, न तन्त्रसाध्य हैं न यन्त्रसाध्य हैं न कोई देवी की करामात है। यह न कोई अलभ्य वस्तु ही है। ऐसी शक्ति कई मनुष्यों को जन्म से ही प्राप्त होती है किन्तु वह शक्ति मन में जागृत हो जाय तो कार्यसाधक नहीं होती।

स्मरण-शक्ति अवधारण-शक्ति-मानसिक शक्ति का विकास करना चाहिए। यह तो एक सामान्य शक्ति है। आत्मा के पास तो इससे अधिकाधिक अनन्त शक्तियाँ हैं। ज्यों-ज्यों चित्त की निर्मलता होगी त्यों-त्यों आत्मा की आन्तरिक शक्तियों का क्रमशः आविर्भाव होता रहता है। चित्त की निर्मलता एकाग्रता से होती है इसलिए योगिजन एकान्त में रहकर यमनियमादि का पालन करके चित्त की एकाग्रता को साधते हैं।

एकाग्रता, ध्यान का एक प्रकार है। अवधान भी ध्यान का एक प्रकार है। इसमें मनुष्यों के बीच में रहकर एकाग्रता साधनी पड़ती है। बिना शान्ति और एकाग्रता के अवधारणा रह नहीं सकती

योग के आठ अङ्गों में धारणा भी एक अङ्ग है। ऐसे उलटे सुलटे पूछे हुए प्रश्नों के उत्तरों को दिमाग में बराबर जमाकर धारणा का प्रयोग बतलाया है, इसी तरह मन की चंचलता हटा कर एकाग्रता द्वारा परमात्मा को हृदय में धारण करने का प्रयत्न करना ही इस प्रयोग का उद्देश्य है। अभीष्ट ध्येय की धारणा करने का दृष्टान्त आपके समक्ष रखा गया है। इस पर से आप महानुभाव ज्ञान और भक्ति द्वारा मल विक्षेप आवरण को दूर करने की—आत्मा की निर्मलता साधने की—कोशिश करेंगे तो आज का प्रयत्न सार्थक होगा। अस्तु अवधानों का क्रमशः उत्तर देने से पहिले उनका विषयवार पृथक्करण श्री० मुनिश्री ने निम्न-प्रकार कर सुनाया —

अ० नं० १, १४, २७, ४१ वें में संस्कृत अनुष्टुप् श्लोक के चार पाद के अक्षर उत्क्रम में कहे गये थे।

अ० नं० २, १५, २८, ४२ वें में शारीरिक, नैतिक, धार्मिक, अध्यात्मिक उन्नति पर उपदेशप्रद कथा कही गई है।

अ० नं० ५, २१, २६, ४३, ४८, ५० वें में क्रमशः संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत, अंग्रेजी, मराठी व उर्दू वाक्य के शब्द उत्क्रम से कहे गये हैं और उन्हें क्रमवार जमाकर पूछा गया है।

अ० नं० ४, १८, ३२, ४६ वें में अक्षांश, क्रान्त्यंश, नतांश, दिनमान आदि ज्योतिष विषयक प्रश्न पूछे गये हैं।

उपर्युक्त प्रकार से पूछे हुए प्रश्नों का पृथक्करण करके निम्न प्रकार उत्तर दिये गये।

अवधान नं० १, १४, २७, ४१ में पूछे गये संस्कृत के उत्क्रम अक्षरों का संस्कृत-अनुष्टुप् श्लोक इस प्रकार बनता है:—

अनुष्टुप् श्लोकः

विवेक एव स्वधर्म पुंसां स्वपरिभूषम ।
अवाद्र्शं समर्थोऽस्मै रविरेव निरामम ॥

प्रो० रामलालजी M A अध्यापक राजस्थान ने खड़े होकर कहा, कि ठीक इसी श्लोक के अक्षरों को मैंने अक्रम से कहा था। यह श्लोक सुनकर सभाजनों को खूब आश्चर्य आनन्द हुआ।

अवधान नं० ६, १५, २८, ४१ में शारीरिक, नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति कैसे हो ? इस विषय में कथा कही गई है।

अवधान नं० १ में ४४ संख्या द्वारा एक परिणाम लाने का सक्षिप्त कराया गया है। श्री विश्वम्भरदयालजी ला० दुर्गाप्रसादजी जैन ला० चांदमलजी पालावत तथा ला० रामचन्द्रजी ने ४४० की संख्या का एक परिणाम की बात का सहर्ष स्वीकार किया।

अवधान नं० ४ में ७ श्लोक और १६ कला' महाराजश्री ने फरमाया और प्रश्नकार पं० श्री बिहारीलालजी ने उत्तर सत्य होना सानन्द मंजूर किया।

अवधान नं० ४ में– "वस्तु गुणम् न चतुरः चतुराननोऽपि" ऐसा संस्कृत वाक्य पूछा था।

प्रश्नकार पं० जयनारायणजी ने यह वाक्य सत्य होना सहर्ष घोषित किया।

अवधान नं० ६—दी हुई गुण्य-गुणक का गुणाकार ठीक

गौ नवां में आता है ? यह पूछने पर प्रश्नकार श्रीरामजी ओझा ने उत्तर ठीक होना स्वीकार किया।

अवधान नं० ७—प्राकृत-श्लोक का संस्कृत-अनुवाद लिखा दिया है।

अवधान नं० ८—नक्षत्र-शोधन के प्रश्न के उत्तर में महाराजश्री ने 'उत्तरा भाद्रपदा' फरमाया।

प्रश्नकार पं० घनश्यामदासजी ने साश्चर्य उत्तर ठीक होना घोषित किया।

अवधान नं० ९ में—"हमारे गुरूने दीनी एक जड़ी" यह सगीत-पद सुनाया था।

अवधान नं० १०-"सुभूम" नाम आपने मन में धारा था।

प्रश्नकार ला० रामजीलालजी ने यही नाम अपने दिल में धारा होना स्वीकार किया।

यह सुन कर सभा को वड़ा आश्चर्य हुआ।

अवधान नं० ११ में—हिन्दी-भाषा में वार्तालाप किया था।

अवधान नं० १२ में—'१५२०७-५११' वताया।

प्रश्नकार पं० केदारनाथजी वी ए ने इस वात को स्वीकार किया।

अवधान नं० १३ में, "२६ दिसम्बर १५३० कोशुक्रवार था' महाराजश्री ने फरमाया।

प्रश्नकार प्रो० वालावकसजी M A L L B ने इस

बातका इन्कार* किया। महाराजश्री ने 'शुक्रवार ही होना चाहिए' फरमाया। प्रोफेसर साहिब ने निश्चितरूप से देखकर कहने को कहा। इतने में मि० एस पी मार्गवने १५-१२ १५१ के अपने जन्मदिन का कौनसा वार होगा?' पूछा। महाराजश्रीने 'रविवार' फरमाया।

प्रिन्सिपल साहिब ने सत्य होना स्वीकार किया। यह सुनकर सभाजनों को अत्यानंद हुआ

प्र० नं० १९ जन्मकुण्डली पर से शुक्लपक्ष में जन्म मालूम होता है'। ऐसा महाराजश्री के फरमाने पर प्रश्नकार ला. सोहन लालजी ने शुक्ल पक्ष में जन्म होना स्वीकार किया।

यह सुनकर सभा हर्षित होकर आश्चर्यमुग्ध हो गई।

अवधान नं १७-५९ में समानान्तर १५ रकमों की जोड़ १ २६५० आती है। यह सुनकर प्रश्नकार श्री शिवराजजी M A ने सत्य होना स्वीकार किया।

१५ रकमों का जोड़ ठीक होना सुनकर मुनिश्री के गणित ज्ञान पर सभा हर्षित होकर आश्चर्यान्वित हो गई।

अवधान नं० १८ में—'सार्वभौम-धर्म' पर संस्कृत-निबन्ध लिख दिया है।

अवधान नं १९ में—'कालपत्र और १० कला' ऐसा महाराजश्री ने फरमाया और पं. कैलाशचन्द्रजी ने उत्तर सत्य होना सानन्द स्वीकार किया।

---

* प्रोफेसर साहिब ने बाद बतलाया था कि महाराजश्री ने जो वार फरमाया था वह ठीक था।

अवधान नं० २० में–भिन्न भिन्न सिक्कों कि संख्या और उनका मूल्य 'रु० ३१—४—०' महाराजश्री ने फरमाया। जो ला० छुट्टनलालजी ने रु० ३१—४—० सिक्कों की संख्या सत्य होना स्वीकार किया।

यह सुनकर सभा आश्चर्यमुग्ध हो गई।

अवधान नं० २१—'ब्राह्मणों का मुख्य धर्म सुशिक्षा पाना है।'

प्रश्नकार प० प्यारेलालजी ने 'पूछा हुआ हिन्दी-वाक्य ठीक है' ऐसा बतलाया।

अवधान नं० २२—'दाहिनी मुट्ठी में २१ और बाईं मुट्ठी में ८ मोती हैं।'

प्रश्नकार ला० जयचन्द्रजी सुजन्ति ने दोनों हाथ में मोती बताकर उत्तर बिल्कुल ठीक होना स्वीकार किया।

सभा को यह देखकर अत्यानन्द हुआ।

अवधान नं० २३—संस्कृत श्लोक का प्राकृत-अनुवाद लिखा-दिया है।

अवधान नं० २४—'तीसरे विद्यार्थी के पास वस्तु छिपी हुई है।'

कॉलेज के विद्यार्थियों ने इस बात को स्वीकार किया।

सभा यह सुनकर आश्चर्यचकित हुई।

अवधान नं० २५—गुजराती-भाषा में बातचीत हुई।

अवधान नं० २६—२८—सोलह कोष्ठकों के यन्त्र की खाना पूर्ति कराई गई है।

अवधान नं० २९ में 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो' प्रश्नकार ने प्राकृत वाक्य ठीक होना स्वीकार किया।

अवधान नं० ३० में—नव कोष्ठकों के यन्त्र की खाना-पूर्ति कराई गई है।

अवधान नं० ११—'आपका जन्म—संवत् १९६४ भाद्रपद शुक्ल ७ और रविवार होना चाहिए।'

प्रश्नकार बा० मयानगजी B. A. LL. B. ने अपना जन्म-दिन ठीक बताना मंजूर किया। यह सुनकर सभाजनों को आश्चर्य हुआ।

अवधान नं० १२—'४८ मात्रा और २० कला' महाराजश्री ने फरमाया और प्रश्नकार एवं सभासदों ने सत्य होना घोषित किया।

अवधान नं० १३—में "ॐ बोलो ॐ बोलो भाई" की ध्वनि का रटन किया गया है।

अवधान नं० १४—में एक पाँखड़ी के पुष्प की ४ कोठी इस प्रकार कही है:—
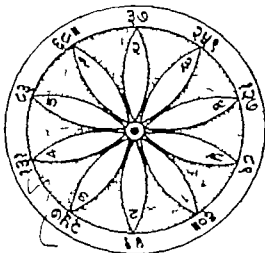
अवधान नं० ३६—में संस्कृत भाषा में वार्तालाप किया था।

अवधान नं० ३७—में 'आपने १ अङ्क छिपाया है'।

प्रश्नकार ने उत्तर ठीक होना स्वीकार किया।

अवधान नं० ३८ में समस्यापूर्त्ति का संस्कृत श्लोक उसी समय लिखाया गया है।

× अवधान नं० ३९

× अवधान नं० ४०

अवधान नं० ४३—God willing we shall meet again

मि० एम० पी० भार्गव ने अंग्रेजी वाक्य ठीक होना स्वीकार किया।

× अवधान नं० ४४

अवधान नं० ४५—संस्कृत-श्लोक उसी समय बनाया गया है।

अवधान नं० ४६—'३५—२० परमदिन' महाराजश्री ने फरमाया जो प्रश्नकार ने सत्य होना स्वीकार किया।

× अवधान ४७

अवधान नं० ४८ 'मि त्याबद्दल पुष्कल विचार केला आहे'

बा० मि० के० के० नानावटी ने मराठी-वाक्य सत्य होना स्वीकार किया।

अवधान नं० ५०—'याददास्त हैरत अङ्गेज और दिमाग अजीब'।

प्रश्नकार वकील विनोदीलालजी ने उर्दू-वाक्य सत्य होना स्वीकार किया।

× प्रश्नकार उपस्थित न होने के कारण अवधान न हो सका।

सभापति का व्याख्यान

उपसंहार होने के बाद सभापति महोदय श्री रामभद्रजी ओझा M. A. LL. B चीफ जस्टिस हाईकोर्ट अलवर ने बड़े हर्ष के साथ जो भाषण दिया उसका सार यह है:—

प्रिय महाशयो !

आज शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी महाराज के इस अवधानोत्सव में आपने मुझको जो प्रमुख चुनने का सम्मान दिया है इस कृपा के लिए मैं आपका आभारी हूँ। वास्तव में ऐसे जितेन्द्रिय महात्मा के उत्सव में कोई ऐसा ही विद्वान्, जितेन्द्रिय, त्यागी और स्फूर्तिशाली सज्जन ही सभापतिपद के आसन को सुशोभित करता तो उचित होता। अस्तु, मुझे तो आपकी आज्ञा का पालन मात्र करना है।

श्रीमान् रत्नचन्द्रजी महाराज !

इस नगर का परम सौभाग्य है कि आप दूर देशान्तर से यहाँपर पधारकर अपनी अवधारण-शक्ति, ज्ञान-शक्ति, और स्मरण-शक्ति के अद्भुत-प्रयोग दिखलाकर और साथ ही उपदेशामृत का पान कराकर हमें उपकृत किया है। इस उपकार को हम कैसे भूल सकते हैं ?

हमारे इस नगर में जितनी सभाएँ हुई हैं उनमें से इतनी विद्वत्समाज एकत्रित हुई हो ऐसी महती सभा तो आज ही हुई है। जिसका श्रेय आपको ही है। अवधान, यह सतत अभ्यास, चिन्तन और ज्ञान-ध्यान का सुन्दर परिणाम है, जिसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य इस विकास मार्ग पर चलकर आगे बढ़ सकता है। महाराज श्री ! आपने ज्ञान-शक्ति और स्मरण-शक्ति का जो आज गुरु-मन्त्र दिया है उस गुरु मन्त्र को जीवन में स्थान देना यह हम सब लोगों का परम कर्त्तव्य है और इसी कर्त्तव्य-पालन में इस अवधान-प्रयोग की सफलता है।

श्री रत्नचन्द्रजी महाराजश्री ! आपका शुभ नाम ही ऐसा है जो हमें जीवन-विकास में प्रेरणा करता है।

'रत्न-चन्द्र-मुनि' ये तीनों ही शब्द ऐसे हैं जो गुणों से भरे हुए हैं। इन गुणों को ग्रहण करना हमारा कर्त्तव्य है।

'रत्न' शब्द, हम गृहस्थलोगों को रत्नों का संग्रह करने का उपदेश देता है। साथ ही रत्नोंका संग्रह करके 'चन्द्र' शब्द चन्द्रसमान शीतल बनने का उपदेश देता है। क्योंकि रत्नों में यही खराबी है कि रत्नों के प्रलोभन में पड़कर मनुष्य गर्वान्वित हो जाता है।

रत्नयुक्त बनो साथ ही चन्द्रसमान शीतल बनो यही 'रत्नचन्द्र' शब्द हमारे चित्त में विचार पैदा करता है। 'रत्नचन्द्र' शब्द के साथ जो 'मुनि' शब्द जोड़ा हुआ है वह हमें यह उपदेश देता है कि रत्नयुक्त बनो साथ ही चन्द्रसमान शीतल बनो किन्तु अन्त में तो हमें मुनि ही बनना पड़ता है और मुनि-मौन-साधना में ही हम मुक्ति को पा सकते हैं, अन्यथा नहीं। मानों,

यही मुनि-मौन साधना करने के लिए आज हमें आत्मसिद्धरूप न हो सिद्धि के लिए मौन-साधना करने का सुअवसर मिला है।

* * * *

मैं अवधान-प्रबन्धक-कमेटी का उपकार माने बिना रह नहीं सकता। अवधान-प्रबन्धक-कमेटी ने जो प्रबन्ध किया है वह अत्यन्त सुन्दर है। हम आज देख सकते हैं कि जैन लोग जैसे धर्मशील हैं वैसे ही कर्त्तव्यशील हैं साथ ही व्यवस्थापक भी हैं।

'जैन' शब्द ही ऐसा है जो हमें समभाव का उपदेश देता है।

'जैन' शब्द को हम उल्टा न पढ़ें तो 'नैज' शब्द बनता है। जैन का अर्थ विजेता और 'नैज' का अर्थ आत्मीय है।

"नैजमेव विपरीतो 'जनो' मुख्या दयालुरेव स्यात्।

जैनो यदि विपरीतो 'नैजो' मैत्र्यात्मता भूयात्" ॥

अर्थात् 'नैज' शब्द को उल्टा से पढ़ा जाय तो 'जैन' शब्द निकलता है जो दयालुता के अर्थ में व्यवहृत होता है और यदि जैन शब्द को उल्टा से पढ़ा जाय तो नैज शब्द आत्मीयता के रूप में व्यवहृत होता है। संक्षेप में जैन शब्द ही ऐसा है जो हमें प्रतिदिन समभाव का उपदेश देता है।

हमें आज जैन शब्द से जो शिक्षा-दीक्षा लेनी की है वह साम्य-भावना है।

आज की सभा में जो साम्यभावना की झलक दिखाई देती है उसका प्रधान कारण आज का अवधानोत्सव है।

महाराजश्री! आपके इस अवधानोत्सव में आपने जो हमको जितेन्द्रियता, स्वाध्याय और निरन्तर अभ्यास का उपदेश दिया है वह हमारे लिए चिरस्मरणीय रहेगा। मैं आपकी

तथा समस्त अलवर जनता की ओर से आपकी सेवा में धन्यवाद अर्पण करता हूँ। अब कार्य समाप्त हो चुका, अत सभा विसर्जित की जाती है।

* * * *

अवधान-प्रयोग के प्रश्न और प्रश्नोत्तर व सभापति महोदय का व्याख्यान हो जाने के बाद श्री चिरञ्जीलालजी B A ने अवधान-प्रबन्धक-कमेटी की तरफ से सब को धन्यवाद दिया और बालकों द्वारा अंतिम प्रार्थना होने के बाद भगवान् महावीर के जयनादों के साथ सभा विसर्जित की गई।

* * * *

नोटः—पुस्तक निम्नोक्त पते से प्राप्त होगी :—

श्री अन्नालालजी अमीचन्दजी पघड़ी वाले

ALWAR

(RAJPUTANA)

श्रीवीतरागाय नम ।

काशीनिवासी कविवर वृन्दावनविरचित

अरहंतपासाकेवली ।

दोहा ।

श्रीमत वीरजिनेशपद, वदों शीस नवाय ।
गुरु गौतमके चरन नमि, नमों शारदामाय ॥ १ ॥
श्रेणिक नृपके पुण्यतें, भाषी गणधरदेव ।
जगतहेत अरहत यह, नाम 'केवली' सेव ॥ २ ॥
चदनके पासाविषै, चारों ओर सुजान ।
एक एक अक्षर लिखौ, श्री 'अरहंत' विधान ॥ ३ ॥
तीन वार डारो तबै, करि वर मत्र उचार ।
जो अक्षर पासा कहै, ताको करौ विचार ॥ ४ ॥
तीन मत्र हैं तासुके, सात सात ही वार ।
थिर ह्वै पासा ढारियो, करिकै शुद्ध उचार ॥ ५ ॥
जानि शुभाशुभ तासुतैं, फल निज उदयनियोग ।
मन प्रसन्न ह्वै सुमरियो, प्रभुपद सेवहु जोग ॥ ६ ॥

प्रथम मत्र ।

ओं ह्रीं श्रीं बाहुबलि लंबबाहु ओं क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षः ऊर्द्ध्व भुजा कुरु कुरु शुभाशुभ कथय कथय भूतभविष्यतिवर्तमानं दर्शय दर्शय सत्यं ब्रूहि सत्य ब्रूहि स्वाहा ।

(प्रथम मंत्र [illegible])

दूसरा मंत्र ।

ओं ह्र ओं स ओं क्ष सत्यं वद सत्यं वद स्वाहा ।

([illegible] जैसा)

तीसरा मंत्र ।

ओं ह्रीं श्रीं विश्वमालिनि विश्वप्रकाशिनि अमोघवादिनि सत्यं ब्रूहि सत्यं ब्रूहि राग्रहि राग्रहि विश्वमालिनि स्वाहा।

(यह मंत्र भी [illegible])

अथ अकारादि प्रथम प्रकरण ।

तोमर ।

अअअ । जो परे तीन अक्षर । तो जानि सुखविस्तार ।
कल्याणमंगल होय । सम्मान बाढै सोय ॥ १ ॥
लक्ष्मी बसे नित धाम । व्यापारमें बहुदाम ।
परदेशमें धनलाभ । संग्राममें जयलाभ ॥ २ ॥
नृपद्वारमें सनमान । संकट कटै प्रमान ।
सब रोग अरु दुर्भाग्य । ततकाल जावैं भागि ॥ ३ ॥
प्रगटै सकल कल्याण । यामें न संशय आन ।
यह महा उत्तम अंक । फल जानो जासु निशंक ॥ ४ ॥

चार्द छंद ।

अअर । दोअकारपर परै रकार । मध्यम फल है सुनो विचार ।
जो कारज चिंती मनमाहिं । सो भी शीघ्र हानको नाहिं ॥५॥

---

१ मन शुद्ध करी जिनवाणिन अथवा अभिप्राय विचारकरी श्रीभगवान भक्ता-मके कल्याणकारक मंत्र तीन बेर जपना । [illegible] [illegible] [illegible] पढ़ै निठी बालका [illegible] पढ़े स्मरण निवारण करना । जिनमार्गमें यह बात निश्चित है । इसे इसकी [illegible] जि अवश्य या यथा जानना होय । ([illegible])

चौपाई छंद ।

अरज । दुइ मवतारक मध्य रसार । पांसा परै तासु सुमिचार ।
उत्तम फलकारी यह हान । निन मन मगल होत उदोत ॥ १४ ॥
पूरब जो धन गया नसाय । सो सब ताहि मिलैगो आय ।
राजा करहि बहुत सनमान । बसन भूमि हय देवहि दान ॥ १५ ॥
भ्राता मित्र समागम होहि । सब विधि सन्तमहात्मन तोहि ।
सकल पापका होय विनाश । धर्मबुद्धि नित करै प्रकाश ॥ १६ ॥

तोमर छंद ।

अरर । जो अरर प्रगटै धरम । तो सकल मंगल करन ।
धन काम सूचत येह । दशादिश विमल जस तेह ॥ १७ ॥
जहँ आस यह मतिवंत । तहँ वर्ण पूजा संत ।
है इष्टबुमिलाप । उपसमिहिं श्री आप ॥ १८ ॥
जल चोर पावक मरी । ये सकहिं नहि कछु करी ।
सब शत्रु करिहै हान । प्रगट सकल कल्यान ॥ १९ ॥
मिलधरमक परमाथ । व्याह आन ह सनाथ ।
उत्तम बहुत फल भय । उत्तम गहो नि धाय ॥ २ ॥

अराई । अराइ परे सो धरम । सामान्यसर्वप्रतिकरन ।
तो जो मनोरथ होय । अनयास पूरै सोय ॥ २१ ॥
कछु कहा है परमाहि । वसु रंग हो मय नाहि ।
निज इष्ट पूजहु जाय । सब विघन जाय नसाय ॥ २२ ॥
मन सोच तजि थिर होहि । आनंद मंगल होहि ।
सब सिद्धि है है काज । अराई कहत महाराज ॥ २३ ॥

अरत । जब अरत पासा ढरै । तब सकल सुख विस्तरै ।
नोहि तिया प्रापति होय । सुत होय पौत्रपि होय ॥ २४ ॥
कुलगोत सब सोभत । तब भाल तिलक लसन ।
जहँ जाहुगे तुम मीत । तहँ लहहु पूजा नीत ॥ २५ ॥
जनमध्य हो तुम केम । ताराविषै शशि जेम ।
यह रुचिर प्रश्न सुजान । मनमें धरो प्रभुध्यान ॥ २६ ॥

अहंअ । जो अहअ छवि देय । तो सुनहु पूछक भेय ।
पहिले कछुक दुख होइ । फिर नाश ह्वै है सोय ॥ २७ ॥
धनलाभ दिन दिन बढै । अरु सुजनसगम चढै ।
जो काम चितहु वृद्ध । सो सकल ह्वै है सिद्ध ॥ २८ ॥

अहंर । जब अहर सु दरसाय । तब अरथलाभ कराय ।
जसलाभ पृथिवीलाभ । यह देख परत सुसाभ (?) ॥ २९ ॥
राजादि बधूवर्ग । सब करहिं आदर सर्ग ।
भ्रातादि इष्टमिलाप । धनधान्य आगम व्याप ॥ ३० ॥
व्यवहार अरु परदेस । सब ओर उत्तम तेस ।
सब सोच सशय हरहु । शुभ तुमहि धीरज धरहु ॥ ३१ ॥

अहह । जो अहह है अक । सो कहत है फल वक ।
दीखै न कारज सिद्ध । यह काज तोर सुबुद्ध ॥ ३२ ॥
धन नाश ह्वै है तोहि । तन क्लेश पीडा होहि ।
व्यापारमें धनहान । परदेश सिद्धि न जान ॥ ३३ ॥
तिहिहेत कर भविजीव । जिन जजन भजन सदीव ।
जप दान होम समाज । तब होइ कुछ इक काज ॥ ३४ ॥

आहूत । अक्षर अहूत परै । तब सकल शुभ विस्तरै ।
कल्याण मंगल धाम । सुत भ्रात मिलहिं सुदाम ॥ ३५ ॥
उपमहिं धनधान्य । संपत्तिसमागम मान्य ।
रनकहिं सब जीत । ताहि लाभ निश्चय मीत ॥ ३६ ॥
अरु होय मनोभीष्ट । निरधार है यह पक्ष ।
ध्रुव है मनोरथ सिद्ध । मनि मान संशय वृद्ध ॥ ३७ ॥
अतअ । यह अतअ भाषत धरम । कल्याणमंगलकरम ।
उपमें श्रीविस्तरन । सब विघ्नमहाभयहरन ॥ ३८ ॥
सुतपौत्रलाभ निहार । वांछित मिलै मनिहार ।
दिन आठमें कछु ताहि । कछु अष्ट मासी होय ॥ ३९ ॥
अतर । जो अतर अक्षर ढरै । ता सकल मंगल करै ।
वाणिज्य सदन सुनाय । घरमाँहि धर्म बधाय ॥ ४० ॥
प्रियबंधुमिलता होहि । तसु मोद मंगल होहि ।
धनधान्यसंयुत होय । धर शीघ्र आवै सोय ॥ ४१ ॥
गजवाजि रथआरूढ । भूपन वस्त्रयुत मूढ ।
संयुत अमित कल्यान । निरभै मिलै सुखमान ॥ ४२ ॥
अतई । अताई ढरै जो अंक । सो अशुभ कहत निशंक ।
महिं भ्रम दीसत भाय । धन हाथहूको जाय ॥ ४३ ॥
है इष्टबंधुवियोग । विपतभयसंपत्तियोग ।
राजादि चोरहु भरी । हैं शत्रु सबही अरी ॥ ४४ ॥
तिहि विघ्ननाशन हेत । कर देवअर्चन सुचेत ।
तिहि पुण्यसे परमान । कर होय मंगलमान ॥ ४५ ॥
अतत । जहँ अतत आवै परन । धनलाभ तहँ शुभि करन ।
संपदा सुखविस्तरन । सब सिद्धि वांछितकरन ॥ ४६ ॥

प्रिय इष्ट बधू मिलन । मन लाभ दिन प्रतिदिनन ।
उद्यम तथा स्नथान । तुव भुव विजय बुधिवान ॥ ४७ ॥
बादानुवादभशार । तुव जान होय उदार ।
यामे न संशय करहु । शुभ जानि धीरज धरहु ॥ ४८ ॥

इति अकारादि प्रथम प्रकरण ।

अथ रकारादि द्वितीयप्रकरण ।

दोहा ।

रअअ । आदिरकार अकार दुइ । जब ये प्रगटे वर्न ।
तब धनसंपतिलाभ बहु । सुजनसमागम कर्न ॥ ४९ ॥
सोना रूपा ताम्र बहु । बसनाभरन सुरत्न ।
प्राप्त होय निश्चय सकल, चिंतित चित सुतजत्न ॥ ५० ॥
अन्तरेन दर्शि सुपन, माला सुमन सुजान ।
हयगजरथ आरूढ अरु, देवागमन विमान ॥ ५१ ॥
रअर । आदि रकार अकार पुनि, तापर परै रकार ।
सुनि पूछक ते तासु फल, है अभिमतदातार ॥ ५२ ॥
देशप्रजाको लाभ है, खेती वर व्यापार ।
धन पावै परदेशमें, घरमें सब सुखसार ॥ ५३ ॥
सगर सकट घेरमें, कुलदेवी सुखदाय ।
करै सहाय प्रसाद तसु, सब विधि सिद्धि लहाय ॥ ५४ ॥
रअह । आदि रकार अकार पर, ह प्रगटे जब आय ।
भयकारी धनहानि यह, होय अशेष कराय ॥ ५५ ॥
यह कारज कर्तव्य नहि, लाभ नाहिं या माहिं ।
बांधवमित्र वियोगता, अस वह सगुन कहाहि ॥ ५६ ॥

जहँ जहँ जातु विदेश तहँ, सिद्ध न ह्वै काज ।
तातैं थिर ह्वै चतुर नर, सुमिरहु श्रीजिनराज ॥ ५७ ॥

रअत । रअत परै पाँसा कहैं, मन घन कूटहि चोर ।
द्रव्यहानि होवहि बहुत, अशुभसकहि चहुँ ओर ॥ ५८ ॥
नाश कुसि पावक लगे, रागरु वाय कुयोग ।
त्रिया काज विनसैं सकल, अशुभ कर्मके भोग ॥ ५९ ॥
तातैं शोक न कीजिये भावीगति बलवान ।
थिर ह्वै निशदिन सुमिरिये कृपासिंधुभगवान ॥ ६० ॥

ररअ । ररअ अंक आवै जहाँ तब एसौ फल जान ।
तब चित चपल चपल अति, पुनि प्रच्छक मतिमान ॥६१॥
मैं चाहत अर्थागमन, मूलनाश तसु होय ।
राजदंड चोरादिभय तनदुख तोहि जोय ॥ ६२ ॥
तनय त्रिया बाँधवनिसों ह्वै है तोहि वियोग ।
अबकै तिसरे बरसमैं कटहि सकलदुखभोग ॥ ६३ ॥

ररर । तिहुँ रकारको फल सुनो मनवांछितफलदाय ।
धरा धान्य धनधाम तोहि मिलहि वस्तु सब आय ॥ ६४ ॥
त्रिया तनय सुत बधू मन हर्षवंतसजोग ।
हस्त उत्तम कल्याण तोहि मिलै सकल संयोग ॥ ६५ ॥
महालाभ उत्तमविषै सदन तथा परदेश ।
सुफल काज तुव होय नित यामैं भ्रम नहिं लेश ॥ ६६ ॥

रराई । दुइ रकारपर इ परै, तब मनवांछित होय ।
सोमनीक सुखसंपदा सहज मिलानै सोय ॥ ६७ ॥
मनक दुंदुभि होइ पुनि अरथलाभ बहु तोहि ।
मिलि है वसुधा नेरा पुर यह प्रतिभासत मोहि ॥ ६८ ॥

जौन काज तुम चित धरउ, तुरित होइ है तौन ।
भूपति अति आनँद करै, नित प्रति मगलभौन ॥ ६९ ॥

ररत । ररत वरन यह कहत हैं, सुन पूछक चित लाय ।
परतियकी अभिलापतैं, किये अनर्थ उपाय ॥ ७० ॥
अरथनाश तातें भयौ, अरु विग्रह घरमाहिं ।
राजदड तैंने सहे, यामें सशय नाहिं ॥ ७१ ॥
तातैं परतिय परिहरहु, शुभमारग पग देहु ।
ब्रह्मचरजजुत प्रभु भजो, नरभवको फल लेहु ॥ ७२ ॥

रहंअ । रहअकार आवै जहा, तहँ उत्तम फल जान ।
वनितापुत्रधनागमन, बधुसमागम मान ॥ ७३ ॥
अरथलाभ जसलाभ पुनि, धरमलाभ ह्वै तोहि ।
रन विदेश व्यापारमें, विजय तुरतहि होहि ॥ ७४ ॥

रहंर । रहर आवै जबहिं तब, विपम काज जिय जान ।
उद्यम सुफल न होय कछु, घर बाहर हैरान ॥ ७५ ॥
शत्रु वहुत सुख कतहुँ नहिं, तातैं तजि यह काज ।
जग सुख निष्फल जानि जिय, भजो सदा जिनराज ॥ ७६ ॥

रहंहं । हजुग आदिरकारकह, सुनिये पूछनहार ।
अशुभ उदय फल अशुभ है, जानहु निज उर धार ॥ ७७ ॥
मति विश्वास करो हिये, मित्र बधु जिय जानि ।
शत्रु होय ये परिनवहिं करहिं वित्तकी हानि ॥ ७८ ॥
धनचिंता नित करत हौ, सो सुपनेहुँ नहिं होइ ।
धरम चिंति कुल देव जजि, तातैं कछु सुख जोइ ॥ ७९ ॥

रहंत । रह तासुपर प्रगट त, सुनि फल पूछनहार ।
याको फल मैं कहा कहौं, सब सुखको दातार ॥ ८० ॥

जहँ पहुँ जाइ निरास नहै, मिल न होय काज ।
तातैं थिर ह्वै पडुर दिन, सुमिरहु श्रीजिनराज ॥ ५७ ॥

रअस । रअस परे पाँसा जहै, मन धन फुटहि चार ।
द्रव्यहानि हानहि बहुत, अशुभकर्महि पहुँ आर ॥ ५८ ॥
नास बुधि पावन मथी रोगहु फल कुजाग ।
किया काज बिनशी सकल, अशुभ कर्मके भाग ॥ ५९ ॥
तातैं लोभ न कीजिये मानोगनि बखान ।
थिर ह्वै जिनगुन सुमिरिये, धरमधर्मशुभध्यान ॥ ६ ॥

ररअ । ररअ अंक आवै जहां तब ऐसो फल जान ।
तब थिर चपल चपन भनि, सुनि प्रच्छक मतिमान ॥६१॥
नै चाहन अर्थागमन मूलनाश तसु होय ।
राजदंड चौराग्निभय तनदुख ताहि बहाद ॥ ६२ ॥
तनय तिया बांधवनिसों ह्वै है ताहि वियोग ।
यातैं सिसर परसमहैं फुटहि सकलसुखभोग ॥ ६३ ॥

ररर । निहुँ रकारको फल सुनो मनवांछितसम्पाप ।
धरा धान्य धनधाम तोहि, मिलहि वरतु सब आय ॥ ६४ ॥
तिया तनय सुत बधू धन इष्टशुभयाग ।
बन उत्तम कल्याण तोहि मिलै सकल संभोग ॥ ६५ ॥
महाक्षम उपसमिवै सदन तथा परदेश ।
सुफल काज तुव होय नित यामें भ्रम नहि लेश ॥ ६६ ॥

ररह । तुर रकारपर ह परै तब मनवांछित होय ।
शोभनीक सुखसंपदा सहज मिलावै सोय ॥ ६७ ॥
मंगल दुंदुभि होय पुनि करपकाम बहु ताहि ।
सिद्धि है वसुधा देश पुर यह प्रतिभासत मोहि ॥ ६८ ॥

जौन काज तुम चित धरउ, तुरित होइ है तौन ।
भूपति अति आनँद करै, नित प्रति मगलभौन ॥ ६९ ॥

ररत । ररत वरन यह कहत हैं, सुन पूछक चित लाय ।
परतियकी अभिलापतैं, किये अनर्थ उपाय ॥ ७० ॥
अरथनाश तातैं भयौ, अरु विग्रह घरमाहिं ।
राजदड तैंने सहे, यामें सशय नाहिं ॥ ७१ ॥
तातैं परतिय परिहरहु, शुभमारग पग देहु ।
ब्रह्मचरजजुत प्रभु भजो, नरभवको फल लेहु ॥ ७२ ॥

रहंअ । रहअकार आवै जहा, तहँ उत्तम फल जान ।
वनितापुत्रधनागमन, वधुसमागम मान ॥ ७३ ॥
अरथलाभ जसलाभ पुनि, धरमलाभ है तोहि ।
रन विदेश व्यापारमें, विजय तुरतहि होहि ॥ ७४ ॥

रहंर । रहर आवै जवहिं तव, विपम काज जिय जान ।
उद्यम सुफल न होय कछु, घर बाहर हैरान ॥ ७५ ॥
शत्रु वहुत सुख कतहुँ नहिं, तातैं तजि यह काज ।
जग सुख निष्फल जानि जिय, भजो सदा जिनराज ॥ ७६ ॥

रहंहं । हजुग आदिरकारकह, सुनिये पूछनहार ।
अशुभ उदय फल अशुभ है, जानहु निज उर धार ॥ ७७ ॥
मति विश्वास करो हिये, मित्र वधु जिय जानि ।
शत्रु होय ये परिनवहिं करहिं वित्तकी हानि ॥ ७८ ॥
धनचिंता नित करत हौ, सो सुपनेहुँ नहिं होइ ।
धरम चिंति कुल देव जजि, तातैं कछु सुख जोइ ॥ ७९ ॥

रहंत । रह तासुपर प्रगट त, सुनि फल पूछनहार ।
याको फल मैं कहा कहौं, सब सुखको दातार ॥ ८० ॥

पिया छाम चक्रिता, सुफल छाम व्यवहार ।
बनिता सुतकों लाभ है, द्रव्यलाभ व्यापार ॥ ८१ ॥

मित्रबंधु वसनाभरण, सहित समागम होय ।
महद्द सुखित परिवार सो, कुलवर्धनजाड ॥ ८२ ॥

रसअ। रत अ बरन पाँसा कहत तुम सम्मुख सौभाग ।
अपागम कल्याणकर, बसन सुन्दर अनुराग ॥ ८३ ॥

मंत्रजंत्र औषधनिमैं, सकल सिद्धि शुभ होय ।
चित चिंतित पुत्रादि सुख निश्चय पैहैं सोय ॥ ८४ ॥

रतर। रतर बरन पासा कहत सुनि पूछक गहि मौन ।
उपमर्में कमी बसै ज्यों पसमें पौन ॥ ८५ ॥

तातैं उपम करहु तुम अरथलाभ तहैं होय ।
तनय धरनि बरनी मिलै नृप सनमानै सोय ॥ ८६ ॥

बसन मिलै घोड़ा मिलै, अनायास है काम ।
धुमर्मनाथ तोहि सर्वदा, सेयैं श्रीजिनराज ॥ ८७ ॥

रतई। रतई कहत प्रभारिकै, सुनि पूछक दे कान ।
पहिले कष्ट बहुत सहे, सो अब गये सुजान ॥ ८८ ॥

मनकी चिंता रहतचित, सो सब पूरन होहि ।
बनिता सुत वसनाभरन, निश्चय मिलि है तोहि ॥ ८९ ॥

आधिव्याधि दुख मसहि सब, चिंता करहु न कोय ।
देवधर्म परसादसौं काज सफल सब होय ॥ ९ ॥

ररतत। ररतत बरन सुनि पूछक, सकल सुफल तुम काम ।
मनवांछित धनसपन, पै ही अति अभिराम ॥ ९१ ॥

जो कारज चितवत रहो, अनायास सो होय ।
मनमें मति संशय करो, धर्मवृद्धि फल जोय ॥ ९२ ॥
शिवहित चाहत तप धरन, तामहँ ह्वै है सिद्धि ।
गहो जिनेश्वर कथित तप ज्यों होवै सुखवृद्धि ॥ ९३ ॥

इति रकारादि द्वितीयप्रकरण ।

अथ हंकारादि तृतीय प्रकरण ।

चौपाई ।

हंअअ । ह अअ वर्न परे जहँ आई । तासु सुनो फल है दुचिताई ।
सूचत कष्टरु चित्त विनाश । लोकविषैं निरआदरभास ॥ ९४ ॥
समरमें नहि जीत दिखावे । उद्यममें नहिं लाभ लहावे ।
जाहु जहाँ कछु कारजहेती । सिद्ध न होय तहाँ तुमसेती ॥ ९५ ॥
त्याग करो यह कारज याते । सेवहु श्रीजिनधर्मसुधा तैं ।
धर्म विना सुखको नहिं लेखा । श्रीभगवान कहे जिन देखा ॥ ९६ ॥
रोग निवार अरोग शरीर । पुष्ट महा बलपौरुष वीर ।
चाहत हो परदेश सिधारो । होय मिलाप तहाँ शुभ सारो ॥ ९७ ॥
हंअर । हअर भाषत है सुख सारा । होय मनोरथसिद्ध तुमारा ।
अर्थ तिया मुदमंगलताई । आनँदसंजुत बांधव भाई ॥ ९८ ॥
उद्यममें धन प्रापति जानो । देशविदेश जहाँ मनमानो ।
रोगीको रुज जाय नसाई । बांधवमित्र मिलैं सब आई ॥ ९९ ॥
देव अराधहु भाव लगाई । सो मनवांछित सिद्ध कराई ।
ज्यों विनमूल पादपै जानो । त्यों विनधर्म न आनँद पानो ॥ १०० ॥
हंअहं । हं अरुहमधि जब अकार । तो सुनि पूछनहार विचार ।
कोमल चित्त तुमार दिखाई । शत्रु सुमित्र गिनो समताई ॥ १०१ ॥

तासहितैं मन आप गँवाया । कारजसुमाव मांहि मन पायौ ।
है कलितकामकलाप पियारे । मैं अति साधु सुभाव सुधारे ॥ १०२ ॥
जो कछु पूर्व भयौ मन हान । सो सब ताहि मिटै सुखदान ।
है तुमको मित भागनि भाग । निश्चय जान अर्थ अनुरागे ॥ १०३ ॥
हे भ्रात । ह भन आय समागम तानैं । मंगल मंजु समागमभाखैं ।
पुत्र सुमित्र समागम होई । देशाराधन काम कहोई ॥ १०४ ॥
धनकी चिन्ता करत हो शीघ्रहि पै हो सोय ।
प्रथ्य पुत्र वनिता बसन सुकृत प्रापती होय ॥ १ ५ ॥
क्लेशव्याधि अब मिट गए देव धरम परसाद ।
सुफल काज नित जानि जिय, भजहु जिनेशपसाद ॥ १०६ ॥
हे राम । करत आप चिन्तावन ऐसे ।
चिन्तित काज करो तुम तैसा ॥
धान्यधनादिक लाभ दिखाई ।
कौशल देश दिशांतर जाई ॥ १ ७ ॥
नृप करै सन्मान तुमारा ।
देश भरा धन् दर उदारा ॥
प्रीति करै तुमसौं सब कोई ।
यामैं संशय रंच न होई ॥ १ ८ ॥
हे रर । हरर अक्षर मानस सांचा । तो मनमे उद्वेग उमाचा ।
चिंत कछु अब धीरज भाई । पीछे होय सुखी अधिकाई ॥ १ ९ ॥
संसय संसत मित्र पियारे । होहि सगा तोहि मंगलकारे ॥
धर्म करै धर्मैं सुखदाई । कौशनि देशदिशांतर जाई ॥ ११ ॥
श्रीजिनधर्मप्रभाव विचारो । है सब भरम सिवा तुमारो ॥
यामैं संशय रंच न मानो । सेवहु श्रीजिनराज सयानो ॥ १११ ॥

हंरहं । मध्यरकार जहां छवि देह । ए जुग आदिरु अंत परेई ॥
उत्तम लाभ लखे फल तांको । पुत्र विवाह भविष्यति जाको ॥११२॥
नारि मिलै घर संपत आवै । वैर मिटै हित प्रीति जनावै ॥
सगर वाद विवादमंझारी । होय विजय तुम आनँदकारी ॥ ११३ ॥
दीखत है शुभभाग तिहारो । यामें संशय रंच न धारो ॥
श्रीजिनचंदपदाम्बुज ध्यावो । ताकरि पूरण पुन्य कमावो ॥ ११४ ॥
हंरत । हरत वर्न वखानत ऐसे । कारज सिद्ध लखै सब जैसे ।
उद्यममें लछमी चिरलाभ । बुद्धरुन्नत विजे तुम साज ॥ ११५ ॥
लाभ लखै सब ठौर तुमारे । हानि हमें नहि दीखत प्यारे ।
किंचित सोच वसै मनमाहीं । ताहु हमें कछु संशय नाहीं ॥ ११६ ॥
शीघ्र मिटै वह सोच तुमारा । है घर मंगल मंजुल सारा ।
श्रीजिनधर्म अराधहु जाई । संजम दान करो सुखदाई ॥ ११७ ॥
हंहंअ । ए जुग अंत अकार उचारो ।

कारज सिद्ध समस्त तुमारो ॥
धामविषैं धन है अधिकाई ।
पुत्र सुपौत्र वढै सुखदाई ॥ ११८ ॥
वांधवमित्रसमागम सूचै ।
जो परदेश विषै अविपूचै (?) ।
संवत एकमँझार पियारे ।
है लछिलाभ तुमैं अधिकारे ॥ ११९ ॥
इष्टपदांवुज सेवहु जाई ।
सर्व मनोरथ सिद्ध कराई ॥
मंगल प्रश्न हिये रखि लीजै ।
श्रीजिनवैनसभाम्रत पीजै ॥ १२० ॥

हंहंर । हं सुग अंत रकार पुकारै । मंगल मोद समस्त तुम्हारै ॥
पुत्रविवाह अवश्यक होऊ । जह विभाम बनै वसु सोऊ ॥ १२१ ॥
साधु प्रसाद सु संपति मूरी । है धन धान्य सबै परपूरी ।
मंगलधाम बढे अधिकाई । जाय जहाँ तहँ लाभ सवाई ॥ १२२ ॥
देव जनौ अपि दान कराजै । सजम होम सबै विधि कीजै ॥
पुन्य किये सुख संपति नाना । बालगुपाल सबै यह जाना ॥ १२३ ॥
हं हं ह । हं निर्मुं जाय परै यह पासा ।
है तहँ मंगलमंदिर वासा ॥
सर्व मनोरथ सिद्धि प्रकासी ।
अर्थ सुलाभ प्रजासुत भासै ॥ १२४ ॥
भूमि मिलै रनमें जय पावै ।
उत्तममें बहु लच्छि कमावै ॥
बांधव मित्रनसों अति मई ।
रोगत है वरधर्म सुगेई ॥ १२५ ॥
आनंद सर्व भविष्यनि ताही ।
यों प्रनिमासुन है सुनि माही ॥
कारज सिद्धि समस्त तुमारा ।
सेवहु धर्म लहो मन पारा ॥ १२६ ॥
हंहंत । हं सुग अंततकार दिखाई ।
उत्तम लाभ सबै तसु माई ॥
चाहत हौ परदेश पधारे ।
है तहँ सिद्धि मनोरथ प्यारे ॥ १२७ ॥
कर्ना वानिजमें सब ठाई ।
सर्व फलै मनवांछित भाई ।

श्रीधनधान्य सुकंचन आदी ।
जे सुर संपति अर्थ अनादी ॥ १२८ ॥
ते सब तोहि मिलैं मनमाने ।
देव गुरुपदभक्ति विधाने ॥
यों सुनि चित्तविषै थिर होई ।
श्रीजिनराज भजो भ्रम खोई ॥ १२९ ॥

हंतअ । हंत अ वरन परै जब पासा ।
तो सुनि अर्थ प्रतच्छ प्रकासा ॥
तें चितमें परसंपति चाहै ।
लोभ बढ्यो तोहि देखत काहै ॥ १३० ॥
तोय किये धन प्रापति होई ।
वेद पुरान पुकारत योंई ॥
लोभ निवारि करो सब चित ।
भावि जु होय सो होवहि मित ॥ १३१ ॥
जाय वितीतै जब कछु काला ।
अर्थ सुलाभ तबै ध्रुव भाला ॥
यामैं संशय रंच न आनो ।
भाषत श्रीअरहंत प्रमानो ॥ १३२ ॥

हंतर । हतर यों दरशावत आई । तो मनमें परचित्त बसाई ॥
चिंतत है सोइ प्रापति होई । ताकरि संपति आनि मिलोई ॥ १३३ ॥
अर्थ समागम कीर्ति अनिंद्या । प्रापति ह्वै तोहि सुंदर विद्या ॥
जो कुछ पूरव द्रव्य गँवायौ । सो सब आनि मिलै मन भायौ ॥ १३४ ॥
जो तुम कारज चेतहु प्यारे । सो सब होई सिद्धि तुमारे ॥
यों जिय जानि तजो दुचिताई । सेवहु श्रीपरमातम जाई ॥ १३५ ॥

हंसाल । इ सुगफ मवि हेम तकार ।
तासु सुना फल पूछनहार ॥
सो मनमें विपरीति बसी है ।
चोरि नृपकी ताप बसी है ॥ ११६ ॥
ता करिके दुख पाप सबै हा ।
लोकनिमें अपकीर्त्ति लहै हो ॥
मास भयो जसराम तुमारो ।
यों लघु शीस सुनो उर धारो ॥ ११७ ॥
अन्य कछु कहसन्य विचारो ।
तासमें वांछित सिद्ध तुमारो ॥
धर्म बढै धनधर्म बढाई ।
यों दरसावत श्रीगुरु भाई ॥ ११८ ॥
हुसात । हलन मास्त उत्तम तामैं ।
जो मन वांछहु होवहि सोमैं ॥
मंगल धाम मिलै धन धान्यं ।
जाहु विदेश तहां बहु मान्यं ॥ ११९ ॥
मंत्र सु जंत्र मैरजताई ।
सैन्य सुधर्मम माहन भाई ॥
और जिती जगमें वर विधा ।
तेहि मिलै श्रम त्याग निरिधा ॥ १२० ॥
इति हकारादितृतीयप्रकरण ।

अथ तकारादि चतुर्थप्रकरण ।

चाही ।

तजअज । जहैं तजअ चरन पासा ढरंत ।
तहँ सुनि पूछक जो फल कहंत ॥

जो करहु देवपूजा पुनीत ।
तो पैहो अभिमत फल विनीत ॥ १४१ ॥
सुत पौत्र सुखद धन धान्य ग्राद ।
यह मिलै तोहि यातिन उल्हाद ॥
व्यापारमाहि यह मिलै दर्ब
अरु जूत विजय न ल्है गर्ब ॥ १४२ ॥
यामे मति चिन्ता मानु मित्त ।
निज इष्टदेवपद भजहु नित्त ॥
विन पुन्य नहीं सुख जगतमाहि ।
जिमि बीज विना नहिं तरु उगाहिं ॥ १४३ ॥

तअर । जब तअर प्रगट होवै सुजान ।
तब मध्यम फल जानो निदान ॥
चित चाहहु वनिता-पुरुष आदि ।
सो आस तजहु सुनि भेदवादि ॥ १४४ ॥
निजभावीवश ये मिलहिं सर्व ।
परिवार कुटुम्बादिक सुदर्व ॥
पहिले जो कछु धन भयो हान ।
सोऊ मिलै अब ही सयान ॥ १४५ ॥
कछु काल व्यतीत भये समस्त ।
है अर्थलाभ तुमको प्रशस्त ॥
यह जान हिये निरधार वीर ।
भजि श्रीपति पद सब टरै पीर ॥ १४६ ॥

तअहं । तत्ता अकार हकार आय ।
हे पूछक तोमों इमि कहाय ॥

निरखत ताहि धनहेत चाह ।
मनमें यह वर्तत है कि माह ॥ १४७ ॥
सो पुन्य बिना कह केम होय ।
है दिन तेरे अनि गए जोय ॥
कछु दिवस वितीत भये प्रमान ।
धनलाभ होय ताको निदान ॥ १४८ ॥
तनि जा सुख पावहु विनीत ।
ता पुन्यहेत कर धमन भीत ॥
जिनराजपदाम्बुजभृंग होय ।
अनअन्य शरण है सब सोय ॥ १४९ ॥
तअत । यह तजन कहत फल प्रगट थाय ।
सुनि पूछक तैं मन मुदितकाय ॥
मन वांछा हो सो होय सिद्ध ।
परदेशतीर्थजात्रा प्रसिद्ध ॥ १५ ॥
इक मास व्यतीत भये प्रमान ।
तोहि अर्थ परापत है सुजान ॥
अरु तन निरोगयुत पुष्ट होय ।
आनंद लहै संशय न कोय ॥ १५१ ॥
तरअ । यह तरअ कहत संका नजाय ।
धनचिंता तेरे मन बसाय ॥
तैं कौन चाहत परदेशगम ।
यह जानहि कारज सिद्ध तौन ॥ १५२ ॥
बहु वस्त्र आभरन अर्थ आए ।
निप तनय काम है है अबाद ॥

पितु मातु बंधुसों मिलन होय ।
यह गुरुसेवाफल जान सोय ॥ १५३ ॥
तातैं नित प्रति हे चतुर जीव ।
सुखकारन सेवो प्रभु सदीव ॥
कल्यानखान भगवान एक ।
तिनको सुमिरो तजि कुमतिटेक ॥ १५४ ॥

तरर । यह तरर प्रकाशत प्रगट मित्त ॥
सुनि पूछक तुव चित दुखित नित्त ॥
तुव घर दरिद्र अति ही दिखाय ।
तातैं नित चाहत धनउपाय ॥ १५५ ॥
निशिवासर चिंता यही तोहि ।
किहि भाति होहि धनलाभ मोहि ।
यह तीन बरष जब बीत जाय ।
तब सब सुंदरफल तोहि मिलाय ॥ १५६ ॥
जो और काज मन धरहु तौन ।
है लाभ तासुमहँ सुजसहौन ।
तातैं जो सुखकी धरहु चाह ।
तो नाहिं जिनेसुर सो निवाह ॥ १५७ ॥

तरहं । तरह अक्षर भाषत प्रतच्छ ।
कल्याणसपदा स्वच्छ लच्छ ।
सब विघ्न निघ्न पलमाहिं होय ।
जिनधर्मप्रभाव सुजान सोय ॥ १५८ ॥
अरथागम अरु वर पुत्र होय ।

रनमें ताहि जीति सकै न कोय ।
बांधवसों प्रीति बढ़ै अपार ।
घरमें नहिं कछु विग्रह लगार ॥ १५९ ॥
सब पापताप तेरो विलाय ।
नित धर्म बढ़ु आनंददाय ।
तातैं सुखहित हे चतुरजीव ।
भगवानचरन सेवो सदीव ॥ १६ ॥

तरत । यह तरत कहत फल सुन विनीत ।
तुव मन धनकारन दुखित मीत ।
बहु चिंतै सोच रहत शरीर ।
मन समाधान अब करहु वीर ॥ १६१ ॥
मोदमुदयुत धनलाभ होय ।
प्रियबंधु समागम सहज सोय ।
परदेशगमन जो करहु मित्र ।
धनलाभ होहि सुखरूप तत्र ॥ १६२ ॥
वादानुवादमें विजय जान ।
हे सभ्यशिरोमणिज्ञानी समान ।
यह मांगलीक शुभ सगुनराज ।
तैं जपि नित श्रीजिनमहाराज ॥ १६३ ॥

तहंम । त अरनपर है तापर मकार ।
जब प्रगटै तब सुनिये विचार ।
सब विघ्नमूल संकट नशाय ।
जहँ जाहु तहाँ नाहिन विलम्ब ॥ १६४ ॥

तातैं गय हानि है विनय नाहिं ।
है अशकटिम निहचै कमाहिं ।
यह दैवीगिरा भखी सुजान ।
धर्मार्थवस्तुको करत हान ॥ १७१ ॥
उद्वेग कलह दुख सदनमाहिं ।
सुत बंधु मित्र अरि सम कहाहिं ।
तब पाप उदय यह जानि लेहु ।
दुख हत धरमसों करहु नेहु ॥ १७२ ॥

तहुत । तत मध्य परै हकार पास ।
तब मध्यम प्रश्न कहै प्रकाश ।
जो मनमें वांछा करहु मित्त ।
नहिं सिद्ध होय सो दुर्दिन चित्त ॥ १७३ ॥
मति वेग करो अपउन्य जान ।
माशीगन अमित प्रबल प्रमान ।
मति मरन पेच गडबुद्धि त्याग ।
सुख चहसि तु करि प्रभुसों सुराग ॥ १७४ ॥

ततअ । जब तनम धरम प्रगटै अघोर ।
तब शुभफल कहत विशाल रास ।
ताहि महा सौख्यको लाभ होय ।
धनधान्यसमागम मिलै सोय ॥ १७५ ॥
राजा दे सन्मानसम पाट ।
व्यापारमाहिं धनलाभ पाट ।
दुरितानिवाद सुतजन्म संग ।
मंगल सब ता गहँ है अभंग ॥ १७६ ॥

ततर । यह तनर वरन पासा भनन ।

आनद सदा ध्रुव तोहि सन ।

सुन बधु धरा धनधान्यलाह ।

परदेश जाहु तहँ अति उछाह ॥ १७७ ॥

बहु मित्रबंधुसों होय प्रीति ।

भय शत्रुजनित सब है वितीति ।

गो महिप अश्व द्वारे बँधाय ।

यामें न मोहि सशय दिखाय ॥ १७८ ॥

ततहं । ततह अच्छर तोहि कहत एह ।

भो पूछक तू उधम करेहु ।

तहँ होहि लाभ तोको प्रसिद्धि ।

चितचिंतित सब विधि होय वृद्धि ॥ १७९ ॥

तीरथहिंडन पूजन विधान ।

सब ह्वै है तेरे मनसमान ।

रोगीको रोग विनाश होय ।

भोगीको भोग मिलैं सु जोय ॥ १८० ॥

मनमें मति खेद करो पुमान ।

तोहि होय सकल कल्याणखान ।

नित देवधर्म गुरु ग्रथ सेव ।

मनवाछित सुखसपदा लेव ॥ १८१ ॥

ततत । तीनों तकार जब उदय होय ।

तब अकल सकल फल कहत सोय ।

मनवाछित कारज सिद्ध जानि ।

कल्याणकारनी प्रश्न मानि ॥ १८२ ॥

अर पुत्र पौत्रको जनम होय ।
 धन आगम सुख विवाह सोय ।
पहिले जो अरथ गयो विनास ।
 सो आन मिलै अनयास पास ॥ १८३ ॥
बैरीको बैर मिटै समस्त ।
 तोहि मिलहिं मित्र बांधव प्रशस्त ।
नित धर्मबुद्धि है है सयान ।
 सर्वथा जान संशय न आन ॥ १८४ ॥
इति तकारादि चतुर्थप्रकरण ।

कविनामकुलनामादि ।

दोहा ।

लालविनोदीने रची सवलसवानीमाहिं ।
 वृंदावन भाषा लिखी कछु इक ताकी छाहिं ॥ १८५ ॥
भूल चूक उर छिमा करि लीजो पंडित शोध ।
 बालबुद्धि मोहि जानिकै, मति कीजो उर क्रोध ॥ १८६ ॥
श्रीमत्पार्श्वजिनेशपद बन्दों बारबार ।
 विघ्नहरन मंगलकरन अशरन शरन उदार ॥ १८७ ॥
धरमचंदके नंदको वृंदावन है नाम ।
 अग्रवाल गोती अगम गोयल है सरनाम ॥ १८८ ॥
काशीवासी तासुने भाषा भाषी एह ।
 विक्रमके अनुसार करि श्रीजिनवरपदनेह ॥ १८९ ॥
सम्वतसर विक्रमविगत चंद्र राम गिग भद ।
 माघकृष्ण आठैं गुरु पूरन जयति जिनेश ॥ १९० ॥

प्रस्तावना

जिन महापुरुष के अवधान देखकर हमलोग आश्चर्य-चकित हुए हैं, उनका इस तरफ पधारना कैसे हुआ, यह जानने की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि ये तो काठियावाड़ की ओर विचरनेवाले है। आपको याद होगा, कि गत वर्ष, स्थानकवासी-समाज के मुनिवरों का एक महासम्मेलन अजमेर में हुआ था। उसमें, भारतभर के करीब २५० मुनिराज पधारे थे। उनमें कई अग्रगण्य, और पूज्य मुनिराज भी थे। शतावधानीजी महाराज भी काठियावाड़ से उसमें पधारे थे और उन्होंने सम्मेलन को सफल बनाने का बहुत प्रयत्न किया था।

ऐसे विद्वान् और बड़े महात्मा का जयपुर में चातुर्मास हो, यह जयपुर संघ की मनोकामना थी और श्रीसंघ ने उनकी सेवा में जाकर जयपुर चातुर्मास करने की साग्रह प्रार्थना की। हमारी विनती को सहर्ष स्वीकार करके शतावधानीजी ने हमारे ऊपर बड़ा ही अनुग्रह किया है।

महासम्मेलन से एक बड़ा लाभ हुआ है, जिसे बत-

साते हुए हमको खूब हर्ष होता है। सम्मेलन के पहले भिन्न भिन्न सम्प्रदायवाले साधुओं को एक साथ मिलने, एक ही स्थान में ठहरने और परस्पर वार्तालाप या विचार विनिमय करने में बड़ा ही संकोच होता था जिससे, आजतक स्थानकवासी समाज को बहुत ही नुकसान उठाना पड़ा है। दिन पर दिन सम्प्रदाय बढ़ने से और इससे हमारे टुकड़े टुकड़े होजाने से हमारा सगठन-बल नष्ट होगया है। इसी कारण आज हमलोग बहुत ही पीछे रह गये हैं। हम आशा करते हैं, कि जिस उत्साह और प्रेम के साथ यह सम्मेलन हुआ और जो सुन्दर संगठन हुआ है, वह हमेशा रहे, जिससे अपनी गिरी हुई हालत सुधरे और हमारा समाज उत्क्रान्ति के जमाने में एकदम आगे बढ़ सके।

जैसा इस चातुर्मास में हमने देखा, वैसा आज तक न देखा था न सुना था। शतावधानीजी के साथ अभ्यास करने के लिये मारवाड़ी मुनिवर और पंजाबी सन्त भी पधारे थे। इस सोलह ठाणे का चातुर्मास जयपुर में हुआ, जिनकी शुभ नामावली निम्नांक है:—

गुजराती सन्त—१ शतावधानीजी, २ मुनि श्री कपूर चन्दजी, ३ मुनि श्री पूनमचन्दजी, ४ मुनि श्री डूँगरसिंहजी।

मारवाड़ी मुनिवर—१ मु० श्री हजारीमलजी, २ मु० श्री छगनलालजी, ३ मु० श्री चाँदमलजी ४ मु० श्री वृजलालजी, ५ मु० श्री चेनमल जी, ६ मु० श्री जितमलजी, ७ मु० श्री मिश्रीमलजी, ८ मु० श्री गणेशमलजी ।

पंजाबी मुनिराज—१ मु० श्री भागमलजी, २ मु० श्री कस्तूरचन्दजी, ३मु०श्री त्रिलोकचन्दजी, ४ मु० श्री फूलचन्दजी ।

उपरोक्त सोलह मुनिराजों ने एक ही स्थान में उतर-कर चातुर्मास प्रेमभाव से व्यतीत किया, जिससे सारे संघ को बहुत ही आनन्द हुआ । इनमें आठ तो विद्यार्थी मुनि-वर थे, उनका जो अभ्यास इस चातुर्मास में हुआ है, सो श्रीसंघ को मालूम करने के लिये यहाँ बतलाना जरूरी समझता हूँ ।

मारवाड़ी विद्यार्थी मुनिवरों का अभ्यासः-(१) चन्द्रालोक (२) दशकुमारचरित, अपहारवर्माचरित तक (३) रघुवंश, आदि के ६ सर्ग तक (४) कुमारसम्भव, आदि के ७ सर्ग (५) माघकाव्य, आदि के दो सर्ग (६) नागानन्द (७) शाकुन्तल सम्पूर्ण (८) हर्षचरित सम्पूर्ण और (६) वृत्तरत्नाकर ।

पंजाबी और गुजराती मुनिवरों का अभ्यासः—

(१) लघु कौमुदी सम्पूर्ण और (२) अभिनव पाठावली भाग १ला। मुनि श्री पूर्णचन्द्रजी ने रघुवंश के पाँच सर्ग भी किये हैं।

महाराजश्री को पूरा समय नहीं मिलता था, इस लिये काव्यआदि ग्रंथ पढ़ाने के लिये एक पंडित आते थे। क्योंकि महाराजश्री ने अध्यापन के साथ आगमोद्धार का कार्य भी शुरू किया था। इसीलिये पंडित बेचरदास जी और गिरधरलालजी का यहाँ आगमन हुआ था। सारे चातुर्मास यह आगमोद्धार का उपयोगी कार्य चालू रहा था।

इसके साथ ही यह बताना भी आवश्यक समझता हूँ, कि इस समय जो आगमोद्धार का कार्य चल रहा है, सो बहुत ही उपयुक्त होगा। क्योंकि, बिलकुल नवीन और अंतिम ढंग से (up-to-date) इसका कार्य हो रहा है। सूत्रों के अनुवाद के साथ स्पष्टीकरण व उपयोगी टिप्पणी और फुटनोट वगैरह भी इसमें दिये गये हैं। मैं आशा करता हूँ, कि सारा जैनसमाज इस कार्य का बड़े ही सम्मान से स्वागत करेगा।

रचना विपर्यास का दोष बताकर अब मैं विषय प्रवेश करता हूँ। शतावधानी महाराजश्री ने काठियावाड़ गुजरात में कई जगह अवधान-प्रयोग किये हैं। इसमें जो

आजतक देखा नहीं था। हाँ, सुना ज़रूर था। हमलोगों में कई तो ऐसे थे, जो अवधान का मतलब ही नहीं समझते थे। इस लिये हम इसका लाभ उठाने के लिये बहुत ही उत्कण्ठित थे।

श्रीसंघ ने, महाराजश्री की सेवा में अवधानों के लिये प्रार्थना की। महाराजश्री ने करीब सात-वर्षों से अवधान करना छोड़ दिया था। तो भी, श्रीसंघ के अत्यन्त-आग्रह को स्वीकार करके आपने बड़ा उपकार किया है। जो चीज आजतक हमने केवल सुनी ही थी, उसको प्रत्यक्ष देखने का मौका मिला, इसलिये श्रीसंघ और जयपुर की जनता महाराजश्री के प्रति अभारी है।

श्री० शतावधानीजी महाराज की ओर से, अवधान-प्रयोग करने की स्वीकृति पाकर, नगर के प्रतिष्ठित-प्रतिष्ठित महानुभावों की एक अवधान-समिति बनी, जिसने अपने हाथ में, अवधान सम्बन्धी सारी व्यवस्था ली। इसी समिति की ओर से, निम्न-प्रकार का निमन्त्रण-पत्र १००० की संख्या में, वितीर्ण हुआ था—

स्मरणशक्ति के अद्भुत-प्रयोग।

श्रीमन् ....

महोदय,

जयपुर में चातुर्मासस्थित शतावधानी पण्डित श्री रत्नचन्द्रजी महाराज ने, अवधान के आश्चर्यकारी प्रयोग दिखलाने की स्वीकृति दी है। अतः आप से सादर अनुरोध है, कि उपरोक्त प्रयोगों को देखने के लिये, नियत समय पर अवश्य पधारने की कृपा करें।

स्मरणशक्ति का विकास कैसे हो, इस विषय पर भी महाराजश्री स्वानुभव प्रदर्शित करेंगे।

स्थान—महाराजास हाईस्कूल, हवामहल के सामने।

समय—८ बजे प्रातःकाल ता० २९ अक्टूबर सन् १९३३ रविवार।

निवेदक—

१ रायबहादुर ठाकुर [illegible]सिंह [illegible], एम० बी०
२ मुंशी [illegible] कामनीलाल, बी० ए०
३ महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा।
४ स्वामी लक्ष्मीराम आचार्य।
५ प्रो० महादेव रामचन्द्र जोग, एम० ए०।
६ पं० सूर्यनारायण शर्मा आचार्य।
७ हकीम मोहम्मद हमीदुद्दीनखाँ, एम० ए०
८ सेठ गुलाबचन्द ढड्ढा एम० ए०।

९ बाबू नन्दलाल निगम, बी० ए० बी० टी० ।
१० सेठ मुन्नीलाल सुकलेचा ।
११ भण्डारी शरयतचन्द ।
१२ सेठ सूरजमल पटोलिया ।
१३ सेठ रामनिवास चौधरी ।

सभा प्रवेश, इस आमन्त्रण-पत्र द्वारा ही होगा ।

आवश्यक सूचना ।

आगन्तुक प्रेक्षक महोदय, निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें—

(१) कार्य, निश्चित समय पर शुरू होजावेगा, अतः नियत समय से १५ मिनट पूर्व ही उपस्थित होजाना चाहिये ।

(२) नियत स्थान पर, बिना किसी शोरगुल के बैठे रहना चाहिये । साथ में, अवधानों की शान्ति में बाधा न पड़े, एतदर्थ बातचीत नहीं करना व बीच में ही बिना ख़ास प्रयोजन के नहीं उठना चाहिये ।

(३) नियत-स्थान में, बीड़ी-सिगरेट पीना सर्वथा वर्जित है ।

(४) अवधानों के प्रयोगों के निमित्त, स्थानीय विद्वान् प्रश्नकर्त्ता नियत किये गये हैं, अतः वे ही प्रयोग-सम्बन्धी प्रश्न पूछेंगे । यदि, नियत प्रश्नकर्त्ताओं के अतिरिक्त अन्य कोई सज्जन, कोई अवधान सम्बन्धी प्रश्न पूछें, तो वे केवल

नियत प्रश्नकर्त्ताओं द्वारा ही पूछे जायेंगे और उसमें भी यह नियम होगा, कि नियत प्रश्नकर्त्ताओं के सिवा जो सज्जन प्रश्न पूछना चाहेंगे उनको नियत तारीख से एक दिन पूर्व, पं० सूर्यनारायणजी शर्मा आचार्य के पास अपने प्रश्न लिखकर भेज देने होंगे। यदि वे उचित समझेंगे, तो अनुमति देंगे।

(४) सोलह वर्ष से कम वय वालों का प्रवेश न हो सकेगा। एक एक कार्ड से एक ही सज्जन आसकेंगे।

(६) कार्यक्रम, उसी सभा में निर्णीत किया जावेगा।

(७) कारणवशात् कार्यक्रम में परिवर्तन भी होसकेगा।

संस्कृत प्राकृत विद्याविलास में, बनारस से दूसरे नम्बर में जयपुर है। यहाँ संस्कृत-कॉलेज और महाराजा कालेज होने के कारण, प्रखर-विद्वान पर्याप्त-परिमाण में हैं। ऐसे मण्डल के मध्य, ममपान जैसे कठिन प्रयोगों में उतरना यह पूरी कसौटी थी।

शहर के मध्यस्थित महाराजा-हाईस्कूल का विशाल चौक पूरा भर गया था। सोलह वर्ष की आयु तक के समस्त ओसवाल-श्रीमाल को आमन्त्रण देने के अतिरिक्त दिगम्बर जैन भाईयों को भी खुले हाथ आमन्त्रण भेजे गये थे। कालेज के प्रोफेसरगण, संस्कृत कालेज का सारा स्टाफ और ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थी, शहर के प्रतिष्ठित-प्रतिष्ठित महानुभाव तथा सरकारी अधिकारीगण हाज़िर

थे । "तीन घण्टे का ऐसा परिपूर्ण प्रोग्राम और अवधान की ऐसी विचित्रता हमने पहले कभी नहीं देखी" , यह बात-चीत श्रोतावर्ग में सुनी जा रही थी । उसमें भी जैनमुनिगण ज्योतिष, साहित्य, न्याय आदि के अभ्यास के साथ ही साथ, स्मरणशक्ति का यहाँ तक विकास किये हैं, कि करोड़ों के गुणाकार तथा भागाकार, काग़ज़-कलम की सहायता के बिना इतनी शीघ्रता से कर डाले और विद्वत्तापूर्ण पादपूर्त्तियों से सब को चकित कर देते हैं, यह देखकर जनता मुग्ध थी । यह दृश्य, इस भूमि में तो बिलकुल ही नया था ।

इस अवधान के महान् कार्य को सफल बनाने में, जिन-जिन महानुभावों ने सहयोग दिया, उनके प्रति हम आभारी हैं । खासकर श्री० धीरजलाल जी तुरखिया अधिष्ठाता जैन-गुरुकुल ब्यावर-जिन्होंने केवल इसी पुनीत-प्रसंग के लिये ब्यावर से जयपुर पधार कर सारा बोझ अपने सिर लिया, और श्री० दुर्लभजी त्रिभुवन जी जौहरी का अत्यन्त आभार मानते हैं, जिन्होंने अपनी सारी शक्ति लगाकर इस मंगल प्रसंग को सफलतापूर्वक सम्पन्न करवाया ।

निवेदक—
मंत्री, अवधान-प्रबन्धक-समिति,
जयपुर ।

अवधानकर्त्ता का जीवन परिचय

कार्तिक शुक्ला १० के शुभ प्रातःकाल में, मुनि मंडल के बीच गजगति से महाराजश्री उपाश्रय की तरफ आती हुई वह भव्य मूर्ति कौन थी? देखनेवाले का सहज ही ध्यान था आप कि ये ही शतावधानीजी होने चाहिये। "आकृतिर्गुणान् कथयति" इस न्याय के अनुसार उनकी प्रसन्न शान्ति मौन मुद्रा का दर्शन, दर्शक के हृदय में स्वाभाविक ही हो जायगा। इस शास्त्रमूर्ति के अद्भुत अवधान और उनकी विलक्षण प्रतिभा देखकर हम सब आश्चर्यचकित होगये थे। यहां पर उनका जीवन-परिचय देते हुए हमको अपार हर्ष होता है।

शतावधानी पं० श्री रत्नचन्द्रजी महाराज का शुभ जन्म भोरारा (जिला कच्छ मुन्द्रा) गाँव में ओसवाल जाति में विक्रम संवत् १९३६ वैशाख शुक्ला १२ शुक्रवार को हुआ था। आपके पिता का नाम वीरपालभाई, माता का नाम लक्ष्मीबाई और आप का संसारपक्ष का नाम श्री रायसीभाई था।

बालपन में गुजराती छः किताबें पढ़कर बारह वर्ष की आयु में अपने बड़े भाई के साथ आप व्यापार-कार्य में लग गये। इस समय बम्बई, दक्षिण, मालवा और अन्य स्थलों की अपनी पेढ़ी की शाखाओं से व्यापारसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया। आप

ही साथ ज्ञानी और विद्वान् के लिये उपयोगी जन स्वभावानुभव का शिक्षण भी लेने लगे, यहीं से आपकी महान् भावी का बीजारोपण हुआ। विचक्षण बुद्धि, कार्य में तत्परता और जन-स्वभाव की परीक्षा वगैरह से युक्त श्री रायसीभाई किसी और ही कार्य के लिये तय्यार हो रहे थे, लेकिन इसकी जानकारी केवल भावी को ही थी।

तेरह वर्ष की उम्र में उनको भी रूढ़ि के अनुसार शादी करनी पड़ी, और वे संसार के अभ्यासी हुए, तीन वर्ष सुखरूप गृहस्थाश्रम भोगने के बाद उनकी पत्नी का स्वर्गवास हुआ। पत्नी पर नई जवानी का अथाह प्रेम होने के कारण आपको अत्यन्त शोक हुआ और इस शोक ने संसार मोह पर प्रचण्ड प्रहार कर के साधुत्व की दिशा दिखलाई। पत्नी की मृत्यु के बाद अपनी एक लड़की को बड़े भाई की वत्सल छाया में रखकर माता-पिता की आज्ञा लेकर अपने संयम ग्रहण करने का निश्चय किया, शुरू शुरू में साधुत्व के आवश्यक धार्मिक ज्ञान का अभ्यास शुरू किया, और १८ वर्ष की आयु में संयम की शरण ली।

सभी को यह जानने की उत्कंठा होगी कि ऐसे शिष्य के भाग्यशाली गुरू कौन हैं? उनके दर्शन करने की जरूर इच्छा हुई होगी। ऐसे रत्न की परीक्षा करने वाले जौहरी सद्गुरु कहाँ हैं? वे वृद्ध होने के कारण, साधु-सम्मेलन में नहीं पधार सके हैं। यह हम लोगों के भाग्य की न्यूनता है।

वि० सं० १९५१ चैत्र शुक्ला तृतीया के दिन १८ साल की आयु में आपने दीक्षा अंगीकार की। उसके बाद श्रीरत्नचन्द्रजी महाराज जैन शास्त्रों का अभ्यास करने लगे, साथ ही साथ देवभाषा (संस्कृत) का पठन भी शुरू किया। थोड़े ही दिनों में उन्होंने अपनी तीव्र बुद्धि के कारण व्याकरण, काव्य अलंकार, नाटक, साहित्य न्याय और तत्त्व में कुशलता प्राप्त की। जैनतत्त्वज्ञान के सिवाय वेदान्त, सांख्यादि तत्त्वों का भी आपने तुलनात्मक अध्ययन किया, इस तरह बारह वर्ष तक अविश्रान्त परिश्रम करके मुनि-जीवन का प्रथम भाग सार्थक किया।

युवावस्था, आत्मा में रही हुई गुप्त शक्तियों के विकास करने का सर्वोत्तम समय है, ऐसा समझ कर गुरुवर्य पूज्य श्रीगुलाबचन्द्र महाराज श्रीरत्नचन्द्रजी स्वामी को व्याख्यान देने और वक्तृत्व शक्ति का विकास करने की अनुकूलता देने लगे। श्री रत्नचन्द्रजी महाराज २९ वर्ष की अवस्था में व्याख्यान और प्रवचन करने लगे।

इस तरह संसार का अनुभव, साधु अवस्था में अभ्यास, व्याख्यान प्रवृत्ति, वक्तृत्वशक्ति का विकास और साथ ही साधुत्व के संयम की शांति का अनुशीलन मुनिश्री को लघुवय में ही प्राप्त हुआ और उनके भावी सत्कार्यों के लिये साधन बना।

मुनिश्री की जैनों के समस्त विद्वान् साधुओं में गिनती

है। साधु-सम्मेलन को सफल बनाने का आपने शुरू से ही प्रयत्न किया था। आपने कई जगह अवधान किये हैं। शीघ्रकविश्री शङ्करलाल ने, साक्षर श्री केशवलाल हर्षदराय ध्रुव ने और बम्बई के श्री चंदावरकर ने आपकी अवधान शक्ति की प्रशंसा की है।

महाराजश्री केवल अवधानी ही नहीं हैं। वे संस्कृत, प्राकृत और गुजराती भाषा के लेखक कवि और वक्ता भी हैं। उनके व्याख्यानों में रम्य बोध, सरल शिक्षा, सादी टकोर और साथ ही साथ तत्त्व विचारक की तत्त्व-गुथनी का सुमेल कैसे रहता है, यह तो आपने अवधान देख कर जाना ही होगा।

शतावधानीजी ने लेखों व साहित्य-रचना द्वारा समाज की खूब सेवा की है। इन्होंने अभ्यासियों की सुगमता के लिये 'जैनागमशब्द-संग्रह' व अर्धमागधी कोष वगैरह संस्कृत, प्राकृत गद्य-पद्यमय कई ग्रंथ तय्यार किये है। 'ग्रंथ अने ग्रंथकार' नामक १९३१ की दूसरी पुस्तक के पृ० ९५ में शतावधानीजी की संक्षिप्त जीवनी व उनकी कृतियों की रूपरेखा दी है। आज तक की उनकी कृतियाँ निम्न प्रकार हैं —

१	श्री अजरामर स्तोत्र अने जीवन-चरित्र	सं० १९६९
२	कर्त्तव्य कौमुदी भाग १ ला	,, १९७०
३	भावना शतक	,, १९७२
४	रत्नगद्यमालिका	,, १९७३
५	अर्धमागधी कोष भाग १ ला।	,, १९७९

६ प्रस्तार-रत्नावली । ,, १९८०
७ कर्तव्य-कौमुदी भाग २ रा । ,, १९८१
८ जैन सिद्धान्त कौमुदी । ,, १९८२
९ जैनागम-शब्द संग्रह । ,, १९८३
१० अर्धमागधी शब्द रूपावली । ,, १९८४
११ अर्धमागधी धातु-रूपावली ,, १९८४
१२ अर्धमागधी कोष भाग २ रा ,, १९८५
१३ अर्धमागधी कोष भाग ३ रा ,, १९८६
१४ अर्धमागधी कोष भाग ४ था ,, १९८७
१५ अर्धमागधी कोष परिशिष्ट (अप्रकट) ,, १९८८
१६ जैन सिद्धान्त कौमुदी सटीक (अप्रकट) ,, १९८९
१७ रेवती दान-समालोचना संस्कृत निबंध सटीक ,, १९९०

अजमेर सम्मेलन के द्वारा नियुक्त की हुई आगमोद्धार समिति की प्रथम बैठक जयपुर में हुई थी। उसमें भी आपने मंत्री होकर खूब प्रयत्न करके, उपरोक्त निर्णय तयार किया था, और इस समिति को चिरस्थायी करने के लिये तन-मन से कार्य कर रहे हैं। ऐसे समाजोपयोगी कार्य में पूर्णतया सफलता मिले ऐसी प्रभु-प्रार्थना करके यह लेख समाप्त करता हूँ।

जयपुर सिटी,
ता० १।१।१७

श्रीसंघसेवक — दुर्लभ ।

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
१ प्रस्तावना	क
२ श्री अवधानकर्त्ता का जीवन चरित्र ...	न

अवधान कार्यक्रम

मगलाचरण	१

विषय और प्रश्नकार

१ संस्कृत अनुष्टुप् श्लोक के प्रथम पाद के अक्षरों को उत्क्रम से कहना प० सूर्यनारायणजी शास्त्री आचार्य	२
२ मनुष्य जीवन विषयक उपदेशक कथा महाराजश्री	२
३ सन् महिना व तारीख के कहने पर उस तारीख का वार कहना । सेठ श्री सूरजमलजी पटोलिया	५
४ धारे हुए नक्षत्र का शोधन। मास्टर जगमोहननाथजी लगर	५
५ चार आदमियों का वींटी (अगुठी) प्रयोग। (१) जौहरी मुन्नीलालजी सुकलेचा (२) जौहरी छगनलालजी त्रीभावन (३) जौहरी विनयचद्रजी (४) जौहरी गिरिधरलालजी . ..	६

६ छः शब्दों का संस्कृत वाक्य उत्क्रम से कहना। पं० रमाकान्तजी — ६

७ तीन रकमों की भारी जोड़ एक समान आवे ऐसी भारी। श्रीमान् मानमलजी मुकीम, — ७

८ संगीत पद। महाराजश्री .. — ७

९ सोलह कलाओं में विभक्त करने की विचारी संख्या की प्रथम योजना। प्रोफेसर प्यारेलालजी माथुर एम० ए — ८

१० प्राकृत भाषा में बातचीत। पं० बेचरदासजी न्यायतीर्थ .... .. — ९

११ जिसके वर्ग का तफावत एक समान होवे ऐसी दस पांखड़ी की प्रथम योजी। प्रोफेसर कन्हैयालालजी वर्मा एम० ए .. .. — १२

१२ हिन्दी छः शब्दों का वाक्य उत्क्रम से कहना। श्रीमान् गुलाबचंदजी ढढ्ढा — १३

१३ गुप्त रक्खे हुए अंक का शोधन। श्रीमान् दौलतमलजी भंडारी वकील M. A., LL. B — १६

१४ संस्कृत अनुष्टुप् श्लोक के द्वितीय पाद के अक्षरों को उत्क्रम से कहना। पं० सूर्यनारायणजी शास्त्री आचार्य — १६

१५ सभा का द्वितीय विभाग। महाराजश्री — १६

१६ दो मुट्ठी में रक्खे हुए मोतियों की संख्या कहना। श्रीमान् रामेश्वरलालजी चौधरी .. — १८

१७ मांगे हुए विषय पर नया संस्कृत श्लोक बनाना।
जौहरी केशरीमलजी चोरडिया ... १८

१८ सोलह क्लासों में विभक्त करने की विद्यार्थी संख्या
की द्वितीय योजना। प्रो० प्यारेलालजी माथुर M. A. १६

१६ हिन्दी भाषा में बातचीत। पं० प्रवीणचन्द्रजी शास्त्री १६

२० जन्मकुंडली पर से शुक्ल या कृष्ण पक्ष का जन्म
कहना। श्रीमान् सोभागमलजी श्रीश्रीमाल ... ११

२१ सोलह कोष्टकों में से वस्तु रक्खे हुए कोष्टक का
शोधन। मास्टर मोतीलालजी ... २१

२२ जिसके वर्ग का तफावत एक समान होवे ऐसी दस
पांखड़ी की द्वितीय योजना। प्रो० कन्हैयालालजी
शर्मा M A . २२

२३ संस्कृत समस्या पूर्ति। पं० पुरषोत्तमदासजी शास्त्री
साहित्याचार्य २३

२४ एक ही प्रकार के आठ अंक वाली रकम के गुणय
और गुणक का शोधन। जौहरी गिरधरलाल दुर्लभजी २३

२५ भुक्तांश और नतांश पर से क्रान्त्यांश कहना। राजमान्य
ज्योतिषी पं० कन्हैयालालजी २३

२६ छः कोष्टकों में धारे हुए नाम का शोधन। श्रीमान्
सिलापसिंहजी कोठारी मसूदावाले... ... २३

२७ सोलह क्लासों में विभक्त करने की विद्यार्थी संख्या

की तृतीय योजना । प्रो० प्यारेलालजी माथुर M. A. २४
२८ पुत्र का रत्न । महाराजश्री ... २४
२९ जन्म संवत्–मास–तिथि और वार का शोधन
जौहरी जिनचन्दजी २५
३० संस्कृत अनुष्टुप् श्लोक के तृतीय पाद के अक्षरों को
उत्क्रम से कहना । पं० सूर्यनारायणजी शास्त्री आचार्य २५
३१ भाषा का तृतीय विभाग । महाराजश्री २६
३२ नतांश और लग्नस्पष्ट पर से नतांश कहना ।
पं० आनन्दीलालजी ज्योतिषी ×
३३ दस पांखड़ी की तृतीय चाबी । प्रो० कन्हैयालालजी
शर्मा M. A १
३४ संस्कृत श्लोक का प्राकृत भाषा में अनुवाद ।
पं० नन्दकिशोरजी साहित्याचार्य ×
३५ समान्तर पन्द्रह रकमों की जोड़ प्रथम भाग—नव
रकम । प्रोफेसर रामनारायणजी भार्गव M. A २१
३६ सोलह अक्षरों में विभक्त करने की विद्यार्थी संख्या
की चतुर्थ योजना । प्रो० प्यारेलालजी माथुर M A ११
३७ छिपे हुए विषय पर संस्कृत में निबंध लेखन । स्वामी
लक्ष्मीरामजी आयुर्वेद-मार्तण्ड १२
३८ पासे के अङ्क का शोधन । जौहरी रतनलालजी
सुराणा १४

३९ भारत के किसी देश की पलभा पर से उस देश का चरखड कहना। राजमान्य ज्योतिषी प० मुकुन्दलालजी ३४
४० छ शब्दों का प्राकृत वाक्य उत्क्रम से कहना। प० कृपालालजी ... ... ×
४१ छ कोष्टकों में से पूछे हुए प्रश्न का शोधन। श्रीमान् भँवरलालजी ... ३४
४२ भारत के किसी देश की पलभा पर से उस देश का परम दिन मान कहना। राजमान्य ज्योतिषी प० नारायणजी ... ×
४३ प्राकृत श्लोक का सस्कृत अनुवाद। झवेरी दुर्लभजी त्रिभोवन ... . ×
४४ क्रान्त्यंश और अक्षांश पर से नतांश कहना। राजमान्य ज्योतिषी प० दुर्गादत्तजी ज्योतिषाचार्य ×
४५ दस पांखडी की चतुर्थ योजना। प्रो० कन्हैयालालजी वर्मा M A. ३५
४६ सस्कृत अनुष्टुप् श्लोक के चतुर्थ पाद के अक्षरों को उत्क्रम से कहना। प० सूर्यनारायणजी शास्त्री आचार्य ३५
४७ कथा का चतुर्थ विभाग (सम्पूर्ण) महाराजश्री ३६
४८ सोलह क्लासों में विभक्त करने की विद्यार्थी सख्या की पूर्ण योजना। प्रो० प्यारेलालजी माथुर ३८
४९ चौसठ पन्ने की योकडी का गणित। बाबू केशरलाल

श्री मजमेरा ×
५० छः शब्दों का मराठी वाक्य उत्क्रम से कहना। प्रो० विट्ठलराय वामन टामनकर B. A ×
५१ समानान्तर पन्द्रह रकमों की जोड़ द्वितीय विभाग छः रकम। प्रो रामनारायणजी भार्गव M. A. १६
५२ दिये हुए विषय पर नया प्राकृत श्लोक बनाना। श्रीमान् चौरमलजी सुराणिया ×
५३ मवकोष्ठक का यंत्र बनाना। श्री मिलापचंदजी सुथार चजीमगंज वाले ×
५४ छः शब्दों का उर्दू वाक्य उत्क्रम से कहना। प्रोफेसर माहम्मद हमीउद्दीनखां मुन्शी M. A ३६
५५ दस पालकी की पैंचम जाती। प्रो कन्हैयालालजी शर्मा M. A. ४०
५६ संस्कृत भाषा में बातचीत। महामहोपाध्याय पं गिरिधर शर्मा ४०
५७ चार व्यक्तियों की धारी हुई अलग अलग संख्या का एक परिणाम लाने का गणित। श्रीमान् हीराचंदजी कोठारी चौगड ×
५८ भारत के किसी भी देश के नक्शे पर से उस देश के कोई भी एक राशि उदयमान कहना। ज्योतिशास्त्री पं० भगवानदासजी जैन ×

५६ जुदी जुदी जात के सिक्कों की सख्या भौर कीमत का शोघन । श्रीमान् अभयराजजी . . ... ×

६० छ शब्दों का अग्रेजी वाक्य उत्क्रम से कहना प्रो० अनिलकृष्ण मित्र M A. ... .. +

६१ एक समान नव अकों का भागाकार। प्रो० कन्हैयालालजी वर्मा M A ... .. +

६२ उपदेश महाराज श्री ४३

६३ उपसहार महाराजश्री , ... ४

+ इस निशान वाले अवधान समयाभाव से छु- गये ।

अवधान प्रयोग

मंगलाचरण ।

ॐकार बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः ॥ १ ॥

भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥ २ ॥

भावार्थ—काम (ऐहिक सुख) और मोक्ष देने वाला बिन्दु युक्त ओंकार (ॐ) का योगिलोग सदा ध्यान करते हैं । उस ॐकार को नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥ १ ॥

भव—जन्म मरण (संसार) के बीज-अङ्कुर पैदा करनेवाले रागद्वेषादि दोष जिनके क्षय हुए हैं, उनको नमस्कार हो । वह चाहे ब्रह्मा हो, विष्णु हो, हर हो या जिनेश्वर हो ॥ २ ॥

उक्त मङ्गलाचरण शतावधानी मुनि श्री शास्त्रविशारद पं० रत्नचन्द्रजी महाराजश्रीने श्रीमुख से फरमाया । तत्पश्चात् निम्नप्रकार अवधान शुरू हुए ।

पहिला अवधान ।

प्रो॰ सूर्यनारायणजी आचार्य ने संस्कृत अनुष्टुप श्लोक के प्रथम पाद के अक्षरों को उत्क्रम से कहा ।

३ रा 'का', ५ वाँ 'दय', २ रा 'र्थ', ४ था 'र्दी', ७ वाँ 'र्थो', १ ला 'ध', ६ ठा 'कु' और ८ वाँ 'खा'। इन अक्षरों को अनुक्रम से बनाने को कहने पर मौन बैठ गये ।

दूसरा अवधान ।

उपरोक्त अक्षरों को ध्यान में रखकर [illegible] मुनिश्रीने उपदेशरूप कथा शुरू की—"अपने सब मनुष्य हैं। फिर भाव अर्थ क्या? हमेशा मनुष्य शब्द मनुष्य के कर्तव्यों का खयाल कराता है। फिर भाव का अर्थ मनन करना विचार करना—पर्यालोचन करना होता है। भर्तृहरिने कहा है कि—ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः मनुष्याः जिसको ज्ञान नहीं है; विचार नहीं है, वह मनुष्य पशुतुल्य है। इस लिये मनुष्य को विचार करना चाहिये कि—

> हुं कोण छुं ? क्यांथी थयो ? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं ?
> कोना सम्बन्धे वळगणा छे ? राखुं के ए परिहरुं ?
> एनो विचार विवेकपूर्वक शान्त भावे जो कर्यो;
> तो सर्व आत्मिक ज्ञानना, सिद्धान्ततत्त्व अनुभव्यां ॥

—मैं कौन हूँ ? मैं कहाँ से हुआ ? और मेरा स्वरूप क्या है ? जगत् की माया के साथ मेरा संपर्क किस तरह से हुआ ? वह

कहां तक रखना और कब छोड़ना ? ये सब विचार जो मनुष्य विवेक पूर्वक करे तो वह अपने आपको पहिचानता हुआ आत्मिक तत्त्व का सिद्धान्त समझ सकता है। और उसी समझके साथ मनुष्यत्व का विकास होना शुरू होता है।

कितनेक लोग शरीर और आत्मा को एक-अभिन्न-समझ कर शरीर की हानि वृद्धि से सुख दुःख मानते हुए जीवन को नष्ट करते हैं, सो ठीक नहीं है। महापुरुषों ने शरीर से आत्मा को भिन्न बताया है, और आत्मा की अमरता बतायी है। गीता में कहा है कि—

नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैन दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

आत्मा को शस्त्र छेदता नहीं, अग्नि जलाती नहीं, न पानी उसे भींजा सकता है, न पवन सूखा सकता है।

यह आत्मा शरीर को वस्त्र की तरह बदलती रहती है। जैसे हम पुराने वस्त्र का त्याग करके नये वस्त्र पहिनते हैं, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को छोड़ कर नया शरीर धारण करती है।

वर्ण, जाति, लिङ्ग वगैरह शरीर की अपेक्षा से है आत्मा की अपेक्षा से नहीं है। शरीराश्रित जाति भिन्न २ होने पर भी उसमें रहने वाली आत्मा वेदान्त की दृष्टि से समान है। अर्थात् आत्मा में जातिभेद या लिङ्गभेद नहीं है। इसीलिये कहा है कि—

आत्मवत् सर्वभूतेषु, परद्रव्येषु लोष्टवत् ।
मातृवत् परदारेषु, यः पश्यति स पश्यति ॥

जगत् में वही देखता है जागृत है-जो कि, सब प्राणियों को आत्मभाव से, पर धन को पत्थर मिट्टी भाव से और परस्त्री को मातृ भाव से देखता है ।

भागवत के तृतीय स्कन्ध के २९ वें अध्याय के २१ और २२ वें श्लोक में कहा है कि—

अहं सर्वेषु भूतेषु, भूतात्मावस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चा विडम्बनम् ॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु, सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोति सः ॥

कपिलजी अपनी माता देवहूतिसे कहते हैं कि-सर्व भूत-प्राणी में आत्म रूप से मैं रहा हूँ । मूढ़ात्मा एक तरफ जीवों में रहा हुआ मेरी अवज्ञा करते हैं और दूसरी तरफ अर्चा-पूजा करते हैं । यह एक प्रकार की विडम्बना है । इस तरह जो आत्मस्वरूप को छोड़ कर मात्र मूढ़ता से बाह्यपूजा करता है वह भस्म (राख) में होम करता है ।

इसका मतलब यह है कि, प्राणीमात्र में ईश्वर का मेरा-आत्मा एक सा है । प्राणी मात्र का हित करना, किसी का अहित न करना, यही ईश्वरपूजा है । खुद ईश्वराभिमुख होना और औरों को ईश्वराभिमुख बनाना ही ईश्वर भक्ति है । इस मनुष्यजन्म का यही

उद्देश है। इस उपदेश को भूल कर कितनेक मनुष्य धन और माया में लुब्ध होकर रात्रि दिवस झूठ प्रपच और अकृत्य करते हैं। वे धन को जितना मानते हैं उतना स्थिर नहीं है। इतना ही नहीं वह है भी कर्माधिन अर्थात् अपनी ईच्छानुसार वह ठहरता भी नहीं है। इसीलिये उसका सचय न करते हुए अन्य जनों का हित करने में और परमार्थ कार्य में धनका सदुपयोग करना ही श्रीमन्तों का कर्तव्य है। इस विषय में भोजराजा का दृष्टान्त देना उपयुक्त होगा।

तीसरा अवधान।

सेठ श्री सूरजमल जी पटोलिया ने शतावधानी मुनि श्री को प्रश्न किया कि, "सन् १८६० के मार्च मास की ७ वीं तारीख को कौन सा वार था ?"

उक्त प्रश्न का उत्तर बाद में देने को फरमाया और चौथा अवधान शुरु हुआ।

चौथा अवधान।

मास्टर श्री• जगमोहन नाथ जी लगर ने २८ नक्षत्रों में से एक नक्षत्र अपने मन में रखकर मुनि श्री को पूछा कि, वह कौनसा नक्षत्र होगा ? जो मैंने धार रक्खा है ! मुनिश्रीने श्रीलगर जी को कहा कि, जिस नम्बर का नक्षत्र धार रक्खा हो, उसमें ३५ जोड़ो और जोड को २८ से भाग दो ! फल २० आया

सो समय में रखकर उत्तर बाद में देने को कहा और पांचवां अवधान शुरू हुआ।

पांचवां अवधान।

चौहरी मुनीलाल भी सुकलेचा, चौहरी भगनलाल त्रिभुवन भाई, चौहरी किशनचन्द दुर्लभजी भाई तथा चौहरी गिरधरलाल दुर्लभजी भाई, इन चार चौहरीयों के बीच में अंगुठी को छिपाने का प्रयोग किया गया। अंगुठी (वींटी) छिपाने के बाद मुनि श्रीने निम्न प्रकार गणित कराया।

चार में से जिस व्यक्ति के पास अंगुठी छिपाई हो उस नम्बर को दुगुना करके उसमें ५ जोड़ो। जोड़कर ५ से गुणा करके १० जोड़ो। यदि मुद्रि बायें हाथमें हो तो तीन और दाहिने हाथमें हो तो दो जोड़ो। उसको १० से गुणा करके अंगुली का नंबर जोड़ो। उसको १० से गुणा करके टेलीफोन नम्बर जोड़ो। इस गणितका उत्तर ४८१२ आया, सो रकम मुनिश्रीने ध्यानमें रख लिया और उत्तर बादमें देनेको कहा।

छठवां अवधान

पंडित रमाकान्तजी शास्त्रीने ८. शब्दों का एक संस्कृत-वाक्य उत्क्रमसे कहा। ४ थां शब्द उज्ज्वलन्ति, ३ रा स्वकीयस्य १ ला हीराः, ६ ठा कथमपि ७ वा धर्म, और २ रा नहीं; इन शब्दोंको अनुक्रमसे जमाकर वाक्य बता दीजिये।

उन शब्दों को ध्यान में रख लिया और सातवां अवधान शुरु किया ।

सातवाँ अवधान ।

श्री० मानमलजी मुकिम ने श० मुनिश्री को विनती की, कि एक ऐसी बाकी लिखाइये कि, जिसकी दोनों रकम और उत्तर आवे उन तीनों ही की जोड़ ४५-४५ ही आवे । इस प्रश्न पर से मुनिश्री ने निम्न रकम लिखाई ।

९८७६५४३२१
१२३४५६७८९

श्रीमुकीमजी को बाकी करने को कह कर आठवां अवधान शुरु किया ।

आठवाँ अवधान ।

श० मुनिश्री ने अतीव मधुर स्वर और तालबद्ध लहक से आध्यात्मिक संगीत पद सुनाया, जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव दिखाई दिया ।

राग आशावरी

आशा औरन की क्या कीजे(२), ज्ञान सुधा रस पीजे ॥ध्रुव॥
भटकत द्वार द्वार लोकन के (२), कुक्कर आशा धारी,

प्र० ३

५३
३५
४५
६०

प्र० ४

५६
४६
५८
३४

दसवाँ अवधान।

प० वेचरदासजी दोसी (जैन न्यायतीर्थ) ने महाराजश्री के साथ प्राकृत भाषा में वार्तालाप शुरू किया।

पं०—अहिंसा पहाणेण जइण धम्मेण सद्धिं "कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन" त्ति गीयावक्कस्स कहं संगई भवइ?

म०—मवयाण नेत्थ काउसंगई भासइ?

पं०—कम्माहिगारप्पयाणो जइणधम्मो पडिसेहं कुव्विज्जा तत्थ हिंसाए संभवा।

म०—वेदिगधम्मो वि किं सुहेसु कम्मेसु अहिगारं देइ वा असुहेसु वि?

पं०—कथिं कम्माणि सुहाणि काणि य असुहाणि ?

म०—सुहेसुं अज्झवसाणेसु पउत्ताणि कम्माणि सुहाणि असुहेसु अज्झवसाणेसु पउत्ताणि खलु कम्माणि असुहाणि भवन्ति। सुहज्झवसाणसब्भावे कयाचि असुहकम्मम्मि जायमाणे वि य तहा कम्मबंध संभवो। असुहज्झवसाणसब्भावे सुहम्मि कम्मम्मि कयाचि जायमाणे वि य सुहकम्मबंधसंभवो। अज्झवसाणा णुसारेणेव सुहासुह बंधो भवइत्ति।

पं०—वेदिगधम्मेण वि असुहज्झवसाणमयियकम्मम्मि नाहिगारो दिज्जइ। किं च सुहासयवन्ताम्मि कम्मम्मि चेवाहिगारो सिया।

म०—तया नत्थि कावि विप्पडिवत्ती। उभयेसिं एगवक्कत्तणेणं समीचीणा सगइ भइइ।

पं०—'मा फलेसु कदाचन' एत्थ वि अत्थि संगई ?

म—एत्थ तु अत्थि संगई सक्का वि णत्थि अरहसधम्मो आदिसइ

सं-' नो इहलोयट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा नो कित्ति-वण्ण-सद्द-सिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए'। (दस ६ ४)। सब्वाणि चेव असुहाणि कम्माणि निज्जरट्ठयाए चेव करणिज्जाणि य कयाचि तत्थान्नाहिलासा करणिज्जाणि कुव्वं निदेसा।

हिन्दी अनुवाद

प० वे०—अहिंसा प्रधान जैन धर्म के साथ **'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन'** यह गीता वाक्य कैसे संगत होवे ?

श० मुनिश्री—आपको इसमें क्या असंगति दिखती है ?

प० वे०—कर्माधिकार देनेमें जैनधर्म प्रतिषेध करता है, क्योंकि उसमें हिंसा का संभव है।

श० मुनिश्री—वैदिक धर्म भी क्या शुभ कर्ममें ही अधिकार देता है ? या अशुभमें भी ?

प० वे०—कौनसे कर्म शुभ है ? और कौनसे अशुभ है ?

श० मुनिश्री—शुभ अध्यवसायसे किये हुए कर्म शुभ हैं, और अशुभ अध्यवसायसे किये हुए कर्म अशुभ है। शुभाध्यवसाय के सद्भावमें कभी २ अशुभ कर्म होते हैं तदपि उससे कर्म बंधन का संभव नहीं है। और अशुभाध्यवसाय के सद्भावमें कभी २ शुभकर्म होते हैं तदपि शुभ कर्मबंधका संभव नहीं है। क्योंकि, अध्यवसाय के अनुसार ही शुभ वा अशुभ कर्मोंका बंध होता है।

प० वे०—वैदिक धर्म भी अशुभ अध्यवसाय जनित कर्ममें अधिकार नहीं देता, किन्तु शुभाशयवाले कर्ममें ही अधिकार देताहै

श० मुनिश्री—तो फिर किसी प्रकार विरोध नहीं रहा। दोनों की एक वाक्यता होनेसे सम्यक् प्रकारसे संगति होती है।

प० वे०—**'मा फलेषु कदाचन'** इसमें भी संगति है ?

श मुनिश्री—इसमें तो असंगति की शंका ही नहीं है। जैनधर्म कहता है कि "न इस लोकके लिए तपोऽनुष्ठान करे न पर लोक के लिए, न कीर्ति-वर्ण-शब्द प्रशंसा—के लिए अनुष्ठान (कर्म) करें; मात्र निर्जराके लिए ही (तपसंयमादि) अनुष्ठान करें। दश० अ० ६, १" सब अनुष्ठान कर्मोंकी निर्जराके लिए ही करें। अन्य किसी प्रकार की अभिलाषा न रक्खें ऐसा स्पष्ट निर्देश है।

ग्यारहवां अवधान
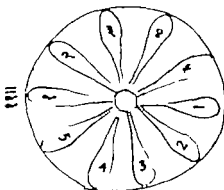
प्रो० कन्हैयालालजी शर्मा M A ने जिसके बीच का अंक १२ आवे ऐसी ९ पांखडी के कमलकी पहिली जोड़ी मिलाने की शतावधानी मुनिश्री को प्रार्थना की। श मुनिश्री ने निम्न प्रकार अंक लिखाये।

बारहवां अवधान

श्रीमान् गुलाबचन्दजी ढढ्ढाने छः शब्दोंका एक हिन्दी वाक्य अनुक्रमसे कहा। ३रा शब्द नियम ६वां है, २रा चौदह, ५वाँ करते, १ला श्रावक, ४था पाला, उक्त शब्दोंको अनुक्रम रखकर वाक्य बनानेकी अर्ज की। श० मुनिश्रीने इसे ध्यानमें रखकर तेरवाँ अवधान शुरु किया।

तेरहवाँ अवधान

वकील श्री० दौलतमलजी भंडारी M.A LL B ने अमुक रकम को २७ से गुणा करके गुणाकार रकममेंसे एक आंक छिपाकर शेष संख्या १५००६ बताई। इसमें छिपाया हुआ आंक बतानेकी मुनिश्रीको अर्ज की। मुनिश्रीने उक्त प्रश्नको ध्यानमें रखकर उत्तर बादमें देने को कहा।

चौदहवाँ अवधान

प्रो० सूर्यनारायणजी आचार्यने संस्कृत अनुष्टुप श्लोक के दूसरे पादके अक्षरोंको उत्क्रमसे कह सुनाया।

३रा अक्षर 'वां', ५वां 'न्ति', ४था 'च्छ', २रा 'मे', १ला 'श' ८वां 'राः' ७वां 'न', ६वां 'ये'। इन अक्षरों को लक्ष्यमें रखकर १५वाँ अवधानमें भोजराजाकी कथा शुरु की।

पंद्रहवाँ अवधान

दानेश्वरी भोजराजाकी उदारवृत्ति जग मशहूर है, उनको धन

संचय करनेका शौक नहीं था। किन्तु अपने नामको अमर बनाने का शौक था। वह समझता था कि—

नाम रहता ठक्करा, नाणा नवि रहंत,
कीर्ति केरा कोटड़ा, पाड्या नहीं पड़ंत।

उनकी सभामें अनेकसे पण्डित बरयाशन पाते थे। वह स्वयं ही शास्त्रवेत्ता था। नवीन साहित्य बनाने की उसको तीव्र उत्कंठा थी। जिससे अनेक पंडितोंको बड़े बड़े पारितोषिक दिया करता था। और गरीबोंको भी बहुतसा दान दिया करता था।

यह देखकर उनके मंत्रीका यह चिंता हुई कि इस तरह तो खजाना खाली हो जायगा। राज्य को निभाना या कोई दुश्मनोंका सामना करना मुश्किल हो जायगा। लेकिन भोजराजाका प्रताप ऐसा था कि उनके मुखपर उनकी इच्छा विरुद्ध कोई बोल नहीं सकता था। मन्त्रीजीका भी राजा के सामने बोलने की ताकत नहीं थी। राजाको शिक्षा देनेका एक नया मार्ग निकाला। श्लोकका एक चरण बनाकरके राजाके सिंहासनकी एक बाजुमें लिखा कि—

"आपदर्थे धनं रक्षेद्"

दूसरे दिन भोजराजा जब राजसभा में आया और सिंहासन पर बैठने लगा तब उनोंने यह पाठ देखा। चरण को पढ़ करके उसका उद्देश्य समझ लिया कि मुझे दान देते अटकाने के लिये मुझ पर नहीं बोल कर सिंहासन पर लिखा गया है।

उसका मतलब यह है कि आपत्त से बचने के लिये धनका

संचय करना चाहिए अर्थात् दानादि से धनका व्यय करना नहीं चाहिऐ।

इसका उत्तर भी इसी तरह देना चाहिए ऐसा शोच करके भोज राजा ने प्रत्युत्तर रूप दूसरा चरण बना करके उसके नीचे लिखा कि—

'महतामापदा कुतः'

अर्थात् बड़े पुरुष पर आपत्ति आती ही नहीं है। तो आपत्ति की चिन्ता क्यों करना?

सभाविसर्जन होने के बाद मंत्रीजीने आकर के देखा तो अपने चरण के नीचे राजा का लिखा हुआ दूसरा चरण भी देखा। मंत्रीजीने विचार किया कि मेरे कथन की राजा पर असर न हुई। राजा को अपनी संपत्ति और महत्ता का बड़ा ही घमड है। राजा यह नहीं समझता है कि बड़े बड़े पर भी आपत्ति आती है। इसलिए और दूसरा पाद लिख कर के राजा को समझाने की आवश्यकता है। ऐसा विचार करके राजा के चरण के नीचे तीसरा चरण बना कर लिखा कि—

'कदाचित् कुप्यते दैवं'

अर्थात् कदाच दैव का कोप हो जाय तब बडे बडे पर भी आपत्ति आजाती है। इसीलिए बड़प्पन का घमड रखना व्यर्थ है।

दूसरे दिन भोज राजा सभामें आकर सिंहासन पर बेठते हैं,

तब तीसरे चरण पर नज़र गई। तीसरा पाद का अर्थ होने पर तुरन्त ही प्रत्युत्तर लिखा कि—

'सचित्त चापि नश्यति'

अर्थात् जब दैव का कोप होता है तब संचय किया हुआ भी नष्ट होता है।

इतना लिख करके अपना काम पूरा करके सभा विसर्जन हुई तब मंत्रीजी ने यह चतुर्थ चरण को देखा और उसका भाव समझ कर मंत्रीजी को संतोष हो गया, और देख लिया कि राजा को समझाने का अब अवकाश नहीं है। मंत्रीजीने समझ लिया कि राजा मुझे समझाते है। राजा को समझाने की मेरे में ताकत नहीं है।

अक्षर के ऊपर से राजा को इतना मालूम तो जरूर हुआ कि यह प्रयास मंत्रीजीका है। इसमें मंत्रीजीको मैं समझाऊँ, ऐसा विचार कर मंत्रीको बुलाया और कहा कि—

अनुकूले विधौ देयं, यतः पूरयितापि सः।
प्रतिकूले विधौ देयं, यतः सर्वं हरिष्यति ॥

अर्थात् दैव जबतक अनुकूल हो तबतक दान कर करके बरना, क्योंकि जितना दोगे उतना पूर्ण करनेवाला अनुकूल विधि है। जब दैव प्रतिकूल हो तब भी दे दे के देना। क्योंकि नहीं देते हुए भी प्रतिकूल दैव संहार करनेवाला है। तो फिर हाथ से क्यों नहीं देना!

कुएँ का पानी जितना उपयोग में आता है, उतना भर जाता है और स्वच्छ रहता है। उपयोग में नहीं आवे, तो पानी गंदा होता है। सदुपयोग करनेवाला लक्ष्मी का मालिक होता है और संचय करनेवाला उसका गुलाम बनता है। मक्खी ने शहद का संचय किया, तो उसको हाथ घिस करके सर कूटना पड़ता है। एक पंडित ने ही मुझे कहा था कि—

"देयं भोज्यधनं धनं सुकृतिभिर्नो संचनीयं कदा,
श्री कर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता।
अस्माकं मधुदानभोगरहितं नष्टं चिरात् संचितं
निर्वेदादिति पाणिपादयुगलं घर्षन्त्यहो मक्षिकाः॥

पंडित को मैंने पूछा था कि मक्खी हाथ घिसघिस करके सिर कूटती है, इसका कारण क्या है? तब पंडित ने जवाब दिया, कि—

'मक्खी यह कहती है, कि श्रीमंतों को धन का संचय नहीं करते हुए गरीबों को, कंगालों को देना चाहिए। इसीलिए ही श्री कर्ण की, राजा बलि और विक्रम की आज पर्यंत कीर्ति है। हमारा जो शहद था, उसका न तो भोग किया, न तो दान दिया, लेकिन संचय किया, तब नष्ट होगया। इसलिए दुःख के मारे हाथ और पैरों को घिस रही हूँ, और देने की बुद्धि नहीं हुई, इसलिए सिर कूट रही हूँ।

फिर राजा ने मंत्री को कहा, कि धन का संचय करनेवाले को

भी जरा, रोग और मृत्यु छोड़ती नहीं है। अर्थात् आपत्ति को कम नहीं हटा सकता है। कम तो क्या लेकिन राजसंपत्ति भी एकत्र भी इन आपत्तियों से नहीं बचा सकता। इस सम्बन्ध में सिकंदर बादशाह का दृष्टांत विचारणीय है।

सोलहवाँ अवधान।

श्री रामेश्वरदासजी जौहरी ने अपनी दोनों मुट्ठी में मोती छिपाकर मुनिश्री को पूछा, कि मोती कितने कितने हैं। श० मुनिश्री ने दाहिने हाथ में जितने मोती हों उन्हें दो से और बायें हाथ के मोतियों को तीन से गुणा कराके दोनों को जोड़ पूछी। जौहरीजी ने जोड़ ४० बतलाई। उसे ध्यान में रखकर मुनिश्री ने उत्तर बाद में देने को कहा।

सत्रहवाँ अवधान।

श्री जौहरी केशरीमलजी चोरड़िया के जैनधर्म का मर्म के विषय पर एक नया संस्कृत श्लोक बना देने की विनती करने पर श० मुनिश्री ने निम्न श्लोक उसी समय बनाकर कहा—

समदृष्ट्या अहिंसायाः स्याद्वादस्य चाश्रयात्।
जैनधर्मस्य केनापि, विरोधो नैव विद्यते॥

अर्थात्—समदृष्टि, अहिंसा और स्याद्वाद के आश्रय से जैनधर्म सभी धर्मों का अपने में समन्वय कर लेता है। इससे

किसी धर्म के साथ जैनधर्म विरोध नहीं रखता है। यही जैनधर्म की खूबी है। यही जैन धर्म का मर्म है।

अठारहवाँ अवधान।

प्रो० प्यारेलालजी माथुर ने २०३ विद्यार्थियों को १६ क्लासों में दूसरे प्रकार से विभक्त करने की विनती की। मुनिश्री ने निम्न प्रकार से खाना पूर्ति कराई।

५			
५५	५४	३२	६१

६			
६०	२४	५१	५८

७
६२
५७
३३
५१

८
३२
५२
६१
५८

अवधान १६ वाँ।

प० प्रवीणचन्द्रजी शास्त्री के साथ हिंदी भाषा में महाराजश्री ने निम्नोक्त बातचीत की—

शास्त्रीजी—दिगम्बर और श्वेताम्बर में क्या मतभेद है?

महाराजश्री—मतभेद पूछने का क्या कारण है? क्या अभी मतभेद जानने का जमाना है या मतभेद भूलने का?

शास्त्रीजी—जानने के लिये पूछता हूँ।

महाराजश्री—मतभेद जानने की भी जरूरत नहीं है। दोनों में कहाँ कहाँ समानता है, यह जानने की जरूरत है। मूल में तो दोनों एक ही हैं। दोनों महावीरस्वामी को मानते हैं। दोनों अहिंसा, सत्य आदि धर्म को मानते हैं। दोनों क्षमा, निर्लोभिता सरलता, मृदुता आदि को यतिधर्म मानते हैं। मैं तो समन्वय की दृष्टि से मूल की ओर देखता हूँ, तो मुझे कोई भेद मालूम नहीं पड़ता। भेद तो मात्र दृष्टि का है। कहा है कि—

भिन्न भिन्न मत देखिए भेद दृष्टिनो एह
एक तत्त्व ना मूळ माँ व्याप्या मानो तेह।

अर्थात्—जो जो मतभेद देखने में आता है, वह वास्तविक नहीं है। किंतु दृष्टि के भेद से ही है। मूल में तो सभी एक तत्त्व में व्याप रहे हैं। दृष्टि के भेद से वस्तु का भेद किस तरह से माना जाता है इसके विषय में पूर्वाचार्यों ने कहा है कि—

'सघन अघन दिन रयणमाँ, बाल विकल ने अनेरा रे;
अर्थे ग्रहे जेम कुसुमा, तिम आप नजर ना फेरा रे।
—श्री जिनेश्वर देशना।

एक ही हरि की परीक्षा करनेवाले भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं। कोई तो बाल है कोई प्रौढ़ है, कोई दूर है, कोई पूरा अनुभवी है और कोई नौसिखिया है। देखने का समय भी प्रत्येक का भिन्न-भिन्न है। कोई बादल सहित सूर्य है तब देखता है, कोई

बादल रहित सूर्य के तेज में देखता है, कोई दिन के भाग में और कोई रात्रि को चन्द्रमा की रोशनी में देखता है। ऐसी दशा में क्या सभी लोग उस हीरे की एक ही क़ीमत करेंगे? नहीं, देखनेवाले और समय भिन्न-भिन्न होने से भिन्न-भिन्न क़ीमत करेंगे। हीरे का तेज बदलता नहीं है, उसकी कीमत बदलती नहीं है। लेकिन देखनेवालों की दृष्टि बदलती है, जिससे एक ही हीरे की भिन्न भिन्न क़ीमत आंकी गई। यह वास्तविक नहीं है। वास्तविक हीरा एक है। परंतु नजर के भेद से भिन्न-भिन्न-सा मालूम पड़ा। वैसे ही तत्त्वों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।

महावीर प्रभु के बताये हुए तत्त्व में भेद नहीं है। इसलिए आप सभी को मेरी यह भलामन है, कि मतभेद की दृष्टि से मन में भेदभाव और विषमभाव न रखते हुए ऐक्यभाव से परस्पर प्रेम-भाव—बंधुभाव रख करके, जिससे देश की और समाज की उन्नति हो ऐसा संयुक्त कार्य करें। सुज्ञेषु किं बहुना!

बीसवाँ अवधान।

श्री सोभागमलजी श्रीश्रीमाल ने अपनी जन्मकुण्डली बतलाकर श० मुनिश्री से पूछा, कि 'मेरा जन्म किस पक्ष का है?'

श०मुनिश्री ने जन्मकुण्डली देखी और उत्तर बाद में देने को कहा।

इक्कीसवाँ अवधान।

मास्टर मोतीलालजी ने एक वस्तु सोलह कोठे में से किसी

एक कोठे में छिपाई और शा० मुनिश्री को अर्ज की कि यह वस्तु किस कोठे में है ? सो कृपया बताइये । इस पर से महाराजश्री ने निम्न प्रकार गणित कराया —

जिस कोठे में वस्तु छिपाई हो उस कोठे के नम्बर को १० से गुणा करके २१ जोडो । उसे १७ से भाग दो । शेष क्या बचा ? शेष ७ बचा, यह कागज़में लिखकर उत्तर बाद में देने को कहा ।

बाईसवाँ अवधान ।

प्रो० कन्हैयालालजी शर्मा M. A. ने महाराजश्री से इस की दूसरी पाँखडी के अंक लिखाने को कहा, जिसके वर्ग का फर्क १२ हो । महाराजश्री ने दूसरे नम्बर की पाँखडी के अंग्रेजी अंक पर ११ और हिंदी अंक पर १ लिखाया ।
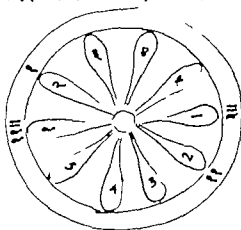
तेईसवाँ अवधान।

प० पुरुषोत्तमदासजी शास्त्री साहित्याचार्य ने संस्कृत पाद-पूर्ति के वास्ते चौथा चरण दिया, कि—'विदाहिनं नन्दयते न चन्दनम्' महाराजश्री ने निम्न प्रकार पादपूर्ति की—

चौराय सौख्यं ददते न चन्द्रिका, रसायनं शान्तिकरं न रोगिणः।
धर्मोपदेशो हितकृन्न दुर्जने, विदाहिनं नन्दयते न चन्दनम् ॥

चौबीसवाँ अवधान।

श्री० गिरधरलालजी दुर्लभजी जौहरी ने महाराजश्री से अर्ज की, कि जिसका गुणनफल ५५५५५५५५ आठ पचा आवे, ऐसे गुण्य गुणाक लिखाइये।

श० मुनिश्रीने निम्न प्रकार गुण्य गुणाक रकम लिखाई—

१५२२०७×३६५

पचीसवाँ अवधान।

राजमान्य ज्यो० प० कन्हैयालालजी ने २७ अक्षांश और ३२ नतांश पर से क्रान्त्यंश कहने को अर्ज की। महाराजश्री ने कहा, दक्षिण में क्रान्त्यंश आवेगा। पंडितजी ने हाँ की और महाराजश्री ने उत्तर बाद में देने को कहा।

छब्बीसवाँ अवधान।

श्री० मिलापचन्दजी कोठारी ममूदावाले ने कई नामों से भरे हुए छ कोठे में से एक नाम धार रक्खा। बाकी के कोठे

मुनिश्री के पास दिये। सारा हुआ नाम बाद में बताने का मुनि-श्री ने फरमाया।

सत्ताइसवाँ अवधान।

प्रो० प्यारेलालजी माथुर M A ने २१ विद्यार्थियों को १६ क्लासों में बाँटने का तीसरा प्रकार बतान की विनती की। महाराजश्री ने निम्न प्रकार मानापूर्ति कराई।

प्र ९ प्र १० प्र० ११

५३	५१
३५	५८

अट्ठाइसवाँ अवधान।

तत्पश्चात् महाराजश्री के मुखारविन्द से निम्न अध्यात्म पद की ध्वनि ८ मिनिट तक सभा में गूंजती रही और नीरव शान्ति फैल गई।

देह विनाशी हुँ अविनाशी, आनन्दमय छ आत्मस्वरूप;
देह मरे से हुँ नवी मरतो अजरामर पद म्हारुँ।

उन्तीसवाँ अवधान।

श्री० विनयचन्द्र दुर्लभजी जौहरी ने अपने जन्म का साल, महीना, तिथि और वार बताने को मुनिश्री से प्रार्थना की।

श० मुनिश्री ने निम्नप्रकार गणित कराया—

जिस साल में आपका जन्म हो, उसके आखिरी दो अंकों को ५ से गुणा करो। उसमें ४ जोड़कर ६० से गुणा करो। उसमें महीने का नम्बर जोड़कर १०० से गुणा करो। सुदी तिथि में जन्म हो तो तिथि की सख्या जोड़ो। बिदी में जन्म हो तो ५० मिलाकर तिथि जोड़कर दस से गुणा करो। उसमें वार की सख्या जोड़ो।

श्री० विनयचन्द्रभाई ने गणित करके उत्तर ५६४५०६ बताया। महाराजश्री ने हिसाब में फर्क होने से दुबारा गिनती करने को कहा। दुबारा गणित करने पर, १७३४५०८१ उत्तर आया। मुनिश्री ने सख्या ध्यान में रखकर उत्तर बाद में देने को फरमाया।

तीसवाँ अवधान।

प्रो० सूर्यनारायणजी आचार्य ने सस्कृत अनुष्टुप् श्लोक के तीसरे पाद के अक्षर उत्क्रम से निम्न प्रकार कहे। ४ था अक्षर **'लो'**, ७ वाँ **'गे'**, ५ वाँ **'प'**, ३ रा **'नि'**, ६ ठा **'यो'**, २ रा **'ना'**, ८ वाँ **'न'**, १ ला 'वि', उक्त अक्षरों को मुनिश्री ने ध्यान में रख लिया।

इकतीसवाँ अवधान।

महाराजश्री ने कथा का तीसरा हिस्सा कहना शुरू किया—

सिकन्दर बादशाह ने दूसरे राज्यों पर चढ़ाई करके अनेक राज्यों को जीतकर बहुत द्रव्य संचय किया। लश्कर भी जीतने के लिए सुनिन्दा में सुनिन्दा इकट्ठा किया। पहले यह यह समझता था कि जितना द्रव्य और लश्कर अधिक होगा, उतना अधिक मेरा राज्य हाथ रहेगा।

कुछ समय के बाद उसके शरीर में तकलीफ हुई। वैद्य और हकीम अच्छी तरह से चिकित्सा करने लगे। तो भी आराम न हुआ। बाहर देशान्तर से भी बहुत-से वैद्य और हकीमों को बुलाया। उम्दा से उम्दा दवाओं का सेवन किया। किंतु सब व्यर्थ गया। मन में निराशा की लहरें उठने लगीं। दर्द मिटेगा या नहीं, इसी चिंता ने उसके दर्द को दिन दूना रात चौगुना बढ़ा दिया। आखिर में उसने यह भी जाहिर किया कि देशी या पर देशी कोई भी उस्ताद हो जो मेरे दर्द का मिटावेगा, उसको लाखों क्या करोड़ों सालामोहर इनाम दूँगा। बहुत-से उम्मीदवार उपचार करने लगे लेकिन परिणाम में शून्य के सिवा कुछ नहीं निकला।

शहाब का रूप टूटने की मानिन्द उसकी आशा—नौका मध्य-समुद्र में झोंके खाने लगी। वजीर को बुलाकर कहने लगा कि अब

मेरी ज़िंदगी जोखिम में है, मैं अब जानना चाहता हूँ, कि खजाने में द्रव्य कितना है ?

वज़ीर—ख़जाना भरपूर है।

बादशाह—उसमें से मेरे साथ कितना आवेगा ?

वजीर—आपके पहले बहुत-से बादशाह होगये, लेकिन किसी के साथ खजाना गया नहीं है।

बादशाह—मेरे साथ भी नहीं आवेगा ?

वजीर—जरूर ही नहीं।

बादशाह—तब उसका उपयोग क्या ?

वजीर—इस जिंदगी में जितना उपयोग किया, उतना ही उपयोग है।

बादशाह—मैं तो उसका कुछ भी उपयोग नहीं कर सका।

वजीर—तो अब क्या करना ?

बादशाह—इस ख़जाने से मेरे जीवन का रक्षण होगा या नहीं ?

वजीर—पैसे से जितना इलाज होसकता था, उतना कर चुके।

बादशाह—अपना लश्कर मौत की सवारी को परास्त कर सकेगा या नहीं ?

वजीर—समव नहीं है। यहाँ के लश्कर से मौत का पराजय होता, तो बड़े-बड़े महाराजा व सार्वभौम

सत्ताधारी कोई मरण के शरण नहीं होते।

बादशाह—अच्छा, मैं अब समझ गया। मेरा रक्षण करने वाला इस दुनिया में कोई नहीं है। इतना द्रव्य और लश्कर होने पर भी मैं निराधार हूँ। धन-दौलत का संचय करने के लिये लाखों क्या करोड़ों आदमियों का जिगर दुखाया। यह ही मेरी भूल हुई। वजीर! वजीर! दूसरे मनुष्य भी ऐसी भूल न करें, इस-लिये मेरा यह पहला फरमान है, कि—

"मारा मरण समये बधी मिल्कत अहीं पधरावजो,
मारी ननामी साथ कब्बर स्थानमाहीं लावजो;
जे बादशाहथी मेळव्युं ते भोगवी पण ना शक्या
अफसोसनी दौलत आपतां पण ए।सिकंदर मा बच्यो

हे वजीर! जब मेरी मृत्यु हावे और मुझे दफन करने को लेजाओ, तब हीरा माणिक, मोती लाल, पन्ना, नीलम सोना चाँदी वगैरह जितनी दौलत है, वह सब खजाने से निकालकर मेरे महल से लेकर कब्रिस्तान तक जमीन पर पसार देना और उस पर से मेरा जनाजा ले जाना।

लोगों को यह जताने के लिए, कि जो धन और दौलत सिकन्दर बादशाह ने अपनी भुजाबल से इतनी तादाद में इकट्ठा किया और उसमें से लाखों करोड़ों का इनाम जाहिर करने पर भी उसको कोई बचानेवाला नहीं मिला। तो द्रव्यसंचय किस काम का! मेरा दूसरा फरमान यह है, कि:—

मारा मरण समये बधा हथियार लश्कर लावजो,
पाछल रहे मृतदेह आगल सर्व ने दोड़ावजो;
आखा जगतने जीतनारुं सैन्य पण रडतुं रह्युं,
विकराल दल भूपालने नव कालथी छोडी शक्युं ॥२॥

मेरे मरण के बाद मेरा जितना लश्कर है, वह सब हाथी, घोड़ा रथ वगैरह मेरे जनाजे के आगे क्रमश लगातार दौड़ाना और लोगों को यह जाहिर करना, कि सारे जगत को जीतनेवाला और कभी पराजय नहीं पानेवाला ऐसा विकराल लश्कर आज रो रहा है। इतना बड़ा लश्कर होने पर भी वह अपने स्वामी को काल के पंजे से छुड़ाने में शक्तिमान् नहीं हुआ।

३१ अवधान होने में ११ बज चुके थे। अत सभा के सचालक प्रो० सूर्यनारायणजी आचार्य ने खडे होकर सभा से कहा, कि महाराजश्री तो १०० से अधिक अवधान करने में समर्थ हैं, किन्तु समय बहुत होगया है। अत मेरे अभिप्राय से अब खास २ अवधान करके अन्य अवधान छोड दिये जायँ, तभी मुक़र्रर समय में कार्य होसकेगा।

हमको महाराजश्री के मुखारविंद से बहुत कुछ सुनने समझने का भी है, कि जो अद्भुत स्मरणशक्ति मुनिराज ने सम्पादन की है, उसे प्राप्त करने का क्या उपाय है? इत्यादि ज्ञातव्य-बातें सुनने को अधिक समय लेना आवश्यक है।

अद्भुत स्मरणशक्ति का विश्वास इतने अवधान पर से भी

भली प्रकार हो जाता है। अत निम्न अवधान मौकूफ रखने की मेरी इच्छा सभा समक्ष जाहिर करके आपकी सम्मति चाहता हूँ।

अवधान नं० १२, ३४, ४०, ४२, ४३, ४४, ४६, ५०, ५२, ५३, और ५७ से ६१ तक। पूज्य मुनिश्री की सेवा में अर्ज करता हूँ कि उक्त नम्बर के अवधानों को कम कर के स्मृति की अद्भुत शक्ति के विषय पर अच्छा व्याख्यान फरमावें।

तैंतीसवाँ अवधान।

प्रो॰ कन्हैयालालजी M. A ने मुनिश्री से कहा, कि तीसरी पाँखड़ी के अंक लिखाइये। मुनिश्री ने तीसरे नम्बर की पाँखड़ी के बिंदी नम्बर पर ३१ और संकेती नम्बर पर २६ लिखाये।
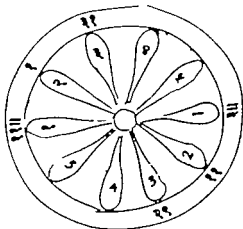
पैंतीसवाँ अवधान।

प्रो० रामनारायणजी भार्गव M A ने समानान्तर १५ रकमों की जोड़ मुनिश्री से पूछनी चाही, जिनमें से नौ रकमें निम्न प्रकार कहीं।

८८१३, ८८३६, ८८५६, ८८८२, ८६०५, ८६२८, ८६५१, ८६७४ और ८६६७, इन नौ रकमों को मुनिश्री ने ध्यान में रख लिया।

छत्तीसवाँ अवधान।

प्रो० प्यारेलालजी माथुर ने २०३ विद्यार्थियों को १६ क्लासों में विभक्त करने का चौथा प्रकार बताने को अर्ज की। मुनिश्री ने निम्न प्रकार लिखाया।

प्र० १२

५५	५४
६०	३४

प्र० १३

३३	६१
५१	५८

प्र० १४

५२
५६
[illegible]
५८

सैंतीसवाँ अवधान।

स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी आयुर्वेदमार्तण्ड ने 'ब्रह्मचर्य' पर संस्कृत निबन्ध लिखाने की विनती की। अतः मुनीश्वर ने निम्न निबन्ध लिखाया —

ब्रह्मचर्य

"चित्तायत्तं धातुबद्धं शरीरम्, नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम्। स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति, तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीयम्॥"

इति प्राचीन पद्यं वक्ति।

शरीरे प्रधानं वस्तु वीर्यमस्ति। वीर्यं शक्तिः। वीर्यं बलम्। नहि वीर्यरक्षणं विना शरीरे बलं तिष्ठति। नापि बुद्धिः नापि ज्ञानम्। नापि स्मृतिः। नापि मेधाः। नापि स्वास्थ्यम्। नाप्यात्मविशुद्धिः।

एतत्सर्वं वीर्यरक्षणरूपब्रह्मचर्येणैव समुज्जीवति। त्यागिनां सन्यासिनां साधूनां ब्रह्मचर्यं परम प्रकर्षं शास्त्रकारै रुक्तम्। गृहस्थानामपि प्रथमावस्थायां पञ्चविंशतिवर्षपर्यन्तं वा सामान्यजीवनचतुर्थभागपर्यन्तमवश्यं ब्रह्मचर्यं पालनीयम्। सुश्रुतेऽप्युक्तम्—

> ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
> यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विनश्यति॥
> जातो वा न चिरञ्जीवेत् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
> तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

इत्यनेन गृहिणामपि प्रथमावस्थायां विद्यार्थ्यवस्थाया-मवश्यं ब्रह्मचर्यं पालनीयमिति निर्दिष्टम् ।

(भाषान्तर)

ब्रह्मचर्य

"शरीर, चित्त के अधीन और धातु से बँधा हुआ है। चित्त के नाश होने पर धातु का भी नाश होजाता है। चित्त स्वस्थ होने पर बुद्धि पैदा होती है। इसलिए, चित्त की सदैव रक्षा करनी चाहिए।" यह प्राचीन श्लोक है।

शरीर में, प्रधान-वस्तु वीर्य है। वीर्य ही शक्ति है, वीर्य ही बल है, बिना वीर्य-रक्षण किये शरीर का बल नहीं टिक सकता। बुद्धि भी नहीं होसकती, ज्ञान भी नहीं होता, स्मृति भी नहीं होती, तेज भी नहीं होता, स्वास्थ्य भी नहीं रहता और आत्म-शुद्धि भी नहीं होती है।

यह सब, वीर्यरक्षणरूप ब्रह्मचर्य से ही उत्पन्न होते हैं। त्यागियों का, सन्यासियों का और साधुओं का, ब्रह्मचर्य परम व्रत-रूप है, ऐसा शास्त्रकारों ने कहा है। गृहस्थों को भी प्रथमा-वस्था के पचीस वर्ष तक या सामान्य जीवन के चौथे हिस्से तक ब्रह्मचर्य अवश्य पालना चाहिए।

सुश्रुत में भी कहा है, कि सोलह वर्ष से कम आयुवाली स्त्री और पचीस वर्ष से कम आयुवाले पुरुष के संयोग से गर्भ रहे, तो कुक्षि में ही गर्भ का विनाश होता है। यदि जन्म हो-

गया, तो उसकी आयु लम्बी नहीं होती। यदि वह जीता रहे, तो उसकी इन्द्रियाँ दुर्बल रहती हैं। इसलिए बाल्यावस्था में गर्भाधान नहीं करना चाहिए।

उक्त कथन के अनुसार गृहस्थों के लिये भी प्रथमावस्था में, अर्थात् बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य का पालन नितान्त आवश्यक है।

अड़तीसवाँ अवधान।

जौहरी श्री० रतनलालजी सुकलेचा ने, पाँसे के अंक छिपाकर महाराजश्री से अङ्क बतलाने की प्रार्थना की। महाराजश्री ने निम्न प्रकार गणित कराया—

पहले पाँसे के अंक में दो जोड़ो। जोड़ का दूना करके १ जोड़ो। उसे ५ से गुणा करो और उसमें दूसरे पाँसे के अंक जोड़े।

इस प्रकार गणित करने पर उत्तर में ५ आया जो मुनिश्री ने ध्यान में रख लिया और उत्तर बाद में देने की फरमाया।

उनचालीसवाँ अवधान।

राजमान्य म्यो० पं० मुकुन्दलालजी ने ८ अंगुल और ८ अंगुल पलमा पर से वारसफल बतलाने की प्रार्थना की। मुनिश्री ने उत्तर बाद में देने का कहा।

इकतालीसवाँ अवधान।

कई प्रश्नों के पाने में से श्री अमरलालजी विशारद ने

एक प्रश्न अपने मन में धारकर मुनिश्री से धारा हुआ प्रश्न बतलाने की प्रार्थना की। महाराजश्री ने बाद में उत्तर देने को कहा।

पैंतालीसवाँ अवधान।

प्रो० कन्हैयालालजी ने फूल की चौथी पाँखडी के अंक लिखाने को कहा, जिसके वर्ग का फर्क १२० हो। मुनिश्री ने हिंदी अंक पर १३ और अंग्रेजी अंक पर १७ लिखवाये।
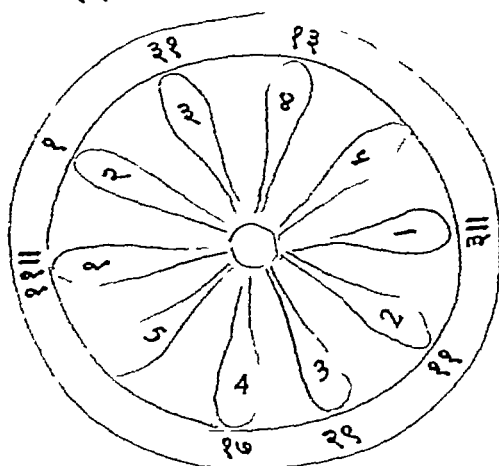
छयालीसवाँ अवधान।

पं० सूर्यनारायणजी आचार्य ने संस्कृत अनुष्टुप श्लोक के चौथे चरण के अक्षर उत्क्रम से कह सुनाये। २ रा 'नं', २ रा

ते', १ ला 'मू', ७ वाँ 'थि', ९ वा 'ओ', ६ ठा 'ना', ५ वाँ 'व', ८ वाँ 'नः । इन अक्षरों को मुनिश्री ने ध्यान में रखकर ४७ वें अवधान में सिकन्दर बादशाह की जो कथा अवशेष थी, वह शुरू की।

सैंतालीसवाँ अवधान।

सिकन्दर बादशाह अपने वजीर से कहता है, कि धन और लश्कर जैसे आखिर में निकम्मे होगये, वैसे ही दवा और वैद भी अन्तिम समय में काम नहीं आये न आते, यह समझाने के लिये मेरा तीसरा फरमान है कि:—

मारा मरण समय बधा वैद्य हकीमो साथशे,
मारो जनाजा एज वैद्याने खभ उपडावशे;
दर्दीयोना दर्दने दफनार्ड कोय छे,
दोरी तुटी आयुष्यनी त्यां साथनार्ड कोय छे ?

मेरा जनाजा, अर्थाशाम लानेवाले मेरे वैद और हकीमों के सिवा दूसरा कोई न उठावे। लोगों को यह मालूम पड़े कि इनमें वैद और हकीम मिलकर भी अर्थीशान सिकन्दर बादशाह को नहीं बचा सके। अन्तिम दर्द से दर्दी को बचानेवाला इस दुनिया में कौन है ? जबतक आयुष्य की डोरी नहीं टूटी है, तबतक ही इलाज काम देता है, लेकिन डोरी जब टूटती है, तब उसको जोड़नेवाला इस जगत् में कौन है ?

कपडा फटा हो, तो उसके पेवन्द लग सकता है, मकान टूटा हो, तो फिर नया बना सकते हैं। जहाज टूटा हो, तो उसकी मरम्मत होसकती है, बरतन फूट जावे, तो उसको जोड सकते हैं। लेकिन जीवन टूटा या फूटा, तो उसकी किसी प्रकार भी रक्षा नहीं होसकती।

इस नाशवान् और अस्थिर जीवन में भी उपयोगी कार्य करने की आवश्यकता है, यह बतलाने के लिये ही यह चौथा फरमान जाहिर करना, कि—

"बाँधी हथेली राखता जीवो जगत मां आवता,
खुल्ले हाथे आ जगत थी सौ जनो चाली जता;
जीवन फना जोबन फना जर ने जगत पण छे फना,
परलोकमां परिणाम फलशे पुण्यनां ने पापनां,"

परलोक से इस लोक में जीव जब आते हैं, अर्थात् जन्म लेते हैं, तब मुट्ठी बँधी हुई रहती है। उसका मतलब यह है, कि परलोक से मुट्ठी में पुण्य भरकर जीव यहाँ आया है और जब यहाँ से जाते हैं, तब हाथ पसारकर खाली हाथ जाते हैं। जीवन फना है, यौवन फना है, दौलत फना है और सारा जगत् भी फना है। तो भी इस जीवन में जो पुण्य और पाप किये हैं, उनका फल दूसरे जन्म में जरूर मिलेगा।

इतना कहकर सिकन्दर ने अपना अन्तिम-जीवन शान्तिपूर्वक व्यतीत किया।

राजा भोज अपने मंत्री से कहते हैं, कि हमलोग तो पुनर्जन्म को माननेवाले हैं। इस जीवन का सौदा मरण तक का ही नहीं है लेकिन अनन्त काल का है। यदि यह जीवन सफल हुआ, तो अनन्त काल तक सफल हुआ और यदि यह एक जीवन खराब हुआ तो अनन्त काल खराब हुआ समझना चाहिए। धर्म और पुण्य का कृत्य कल करना हो, सो आज ही करना, शाम को करना हो सो सुबह ही करना, क्योंकि जीवन का एक क्षण भी भरोसा नहीं है।

राजाजी के इस उपदेश का मन्त्री के मन पर खूब असर हुआ। मैं आशा करता हूँ, कि आपलोग भी इस बोध को सुन-कर अपने जीवन को अवश्य ही सफल करेंगे। सुज्ञेषु किं बहुना ?

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

अड़तालीसवाँ अवधान।

प्रो॰ प्यारेलालजी माथुर ने २ १ विषयों को १६ श्रेणियों में विभक्त करने की योजना पूर्ण कर देने की मुनिश्री से प्रार्थना की। श्री मुनिश्री ने सोलह श्रेणियों की निम्न प्रकार से आशापूर्ति कराई।

पचपनवाँ अवधान ।

प्रो॰ कन्हैयालालजी ने महाराजश्री से पाँचवीं पाँखड़ी के अंक सिखाने की प्रार्थना की । मुनिश्री ने हिन्दी अंक पर ११ और अंग्रेजी अंक पर ७ लिखवाये ।

छप्पनवाँ अवधान ।

महामहोपाध्याय शास्त्री श्री॰ गिरिधर शर्मा ने महाराजश्री से संस्कृत-भाषा में निम्न प्रकार वार्तालाप किया ।

गिरिधर शर्मा—कर्मरहितानां मुक्तानां किं ज्ञानं सम्भवति ।
महाराजश्री—सम्भवत्येव ।

गिरि०—किं ज्ञानमस्ति ?

महा०—तेषां केवलज्ञानमस्ति । जैनदर्शने पञ्चविधानि ज्ञानानि—मति श्रुतावधि मनःपर्यवकेवलज्ञानानि। आद्ये द्वे परोक्षे तयोरिन्द्रियमनोऽधीनत्वात् । अन्तिमानि त्रीणि प्रत्यक्षाणि तेषामिन्द्रियानधीनत्वे सत्यात्मज्योतिर्मात्र जन्यत्वात् , तत्राप्यवधिमनः पर्यवज्ञाने विकलप्रत्यक्षे केवलज्ञानं च सकल प्रत्यक्षम् । तच्च कर्मरहितानां मुक्तानां सुतरां सम्भवति ।

गिरि०—किं तेषां प्रवृत्ति सम्भवति ?

महा०—नैव ।

गिरि०—तर्हि ज्ञानं कथम् ?

महा०—तस्य कथ चिदात्मस्वरूपत्वात् वेदान्तेपि विज्ञानमयं ब्रह्मेत्युक्तत्वात् यावज्ज्ञानावरणादिकर्मजन्यमावरण तावन्न स्वरूपाविष्कारः । मुक्ताना तु क्षीणावरणत्वात्स्वरूपाविर्भावेन सहजमेव ज्ञानम् ।

गिरि०—अस्मदादीनां तत्कथं न भवति ?

महा०—अस्मदादीनामावरणसद्भावात् ।

गिरि०—इन्द्रियातीत पदार्थानामपि तेषां ज्ञानं भवति ?

महा०—सुतरां भवति ।

गिरि०—कथमिव ?

महा०—योगिज प्रत्यक्षमिव । अस्तु ।

संस्कृत वार्तालाप का हिन्दी अनुवाद

गिरि०—क्या कर्मरहित मुक्तात्मा को ज्ञान होता है ?

मुनि०—हाँ, होता है।

गिरि०—कौन सा ज्ञान होता है ?

मुनि०—उनको केवलज्ञान होता है। जैनदर्शन में ५ प्रकार के ज्ञान कहे हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवलज्ञान। उनमें पहले दो मति और श्रुत परोक्ष ज्ञान हैं। क्योंकि, वे इन्द्रिय और मन के अधीन हैं। तीन ज्ञान—अवधि, मनःपर्यय और केवल—प्रत्यक्षज्ञान हैं। क्योंकि, वे इन्द्रियाधीन नहीं हैं मात्र आत्मज्योतिरूप हैं। उनमें भी अवधि और मनःपर्ययज्ञान विकल प्रत्यक्ष हैं और केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है और वह कर्मरहित मुक्तात्मा को होता है।

गिरि०—क्या मुक्तात्मा की प्रवृत्ति होती है ?

मुनि०—नहीं।

गिरि०—तो फिर ज्ञान कैसे होता है ?

मुनि०—ज्ञान तो कर्मरहित आत्मस्वरूप है। वेदान्त में भी विज्ञानमय ब्रह्म कहा है। जहाँतक ज्ञानस्वरूपी कर्मजन्य आवरण है, वहाँतक सत्यस्वरूप प्रकट नहीं होता। मुक्तात्माओं का आवरण क्षीण होने से स्वरूप का सहज आविर्भाव-ज्ञान होता है।

गिरि०—हमको ज्ञान क्यों नहीं होता ?

मुनि०—आवरण होने से ज्ञान समझना नहीं है।
गिरि०—इन्द्रिय से दूर के पदार्थों का ज्ञान भी उनको होता है?
मुनि०—हाँ, अवश्य होता है।
गिरि०—किस प्रकार?
मुनि०—योगी के प्रत्यक्ष की तरह। अस्तु।

उपदेश

गृहस्थो! आज का प्रसङ्ग विकास के साथ सम्बन्ध रखता है। अधिक-से-अधिक शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास करना ही मनुष्य-जीवन का ध्येय है। शारीरिक विकास का अर्थ है—शरीर का आरोग्य सम्हालकर सम्पूर्ण आयु भोगना, जिससे मानसिक और आत्मिक विकास की पूर्णतया साधना होसके। वर्तमान में आर्यावर्त की स्थिति शोचनीय होगई है। वैद्य, डाक्टर, दवाखाना इत्यादि बढ़ने के साथ २ रोग और रोगियों की संख्या प्रतिदिन बढती दीखती है। ग्राम्यजनों में जितना आरोग्य दीखता है, उतना शहरीजनों में नहीं दीखता। अपने पूर्वजों की आयु से, आज की आयुष्य में अधिक हानि हुई है। इतना ही नहीं, किन्तु अन्य देशों की तुलना में भारत की मरण-संख्या भी अधिक है। अन्य देशों में, सौ वर्ष से अधिक आयुवाले बहुत-से मनुष्य मिल सकेंगे, जब कि भारतवर्ष में ७५ वर्ष से अधिक उम्रवाले इने-गिने मनुष्य मिलेंगे।

ऐसी विषम-परिस्थिति का मुख्य कारण है—खानपान की अनियमितता और अमर्याद भोग-विलासवृत्ति।

बाललग्न की प्रथा न केवल वर्तमान और भावी प्रजा को खूब हानि पहुँचाई है। सुश्रुत के वचन तो स्पष्ट हैं, कि सोलह वर्ष से कम उम्र की कन्या और २५ से कम उम्र के पुरुष के संयोग द्वारा जो गर्भोत्पत्ति होगी, वह गर्भ में ही नष्ट होजाती है। कभी जन्म हुआ, तो दीर्घजीवी नहीं होसकती। दीर्घजीवन हुआ तो इन्द्रिय बलवती न होगी। इसलिये बाललग्न की प्रथा को, ब्रह्मचर्य के लिये घातक समझकर रोकना चाहिए।

विद्यार्थियों के लिये वीर्यरक्षण अर्थात् ब्रह्मचर्यपालन परमावश्यक है। क्योंकि ब्रह्मचर्य से आरोग्य बढ़ता है और शरीर शक्ति-सम्पन्न बनता है। शारीरिक स्वास्थ्य से मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य से स्मरणशक्ति विकसित होती है। तालाब में पानी आरहा हो, उसी समय पानी जाने का मार्ग भी खोल दिया जाय, तो तालाब की स्थिति कैसी बने? इसी तरह विद्याभ्यास के समय में शरीर-विकास और शक्ति-संचय करने की आवश्यकता है, उस समय यदि वीर्यव्यय का मार्ग खुला कर दिया जाय, तो विद्यार्थी की कैसी दशा हो? इसका विचार आप स्वयं कर सकते हैं।

कई विद्यार्थी विद्याभ्यास पूर्ण करने के पहले ही राजयक्ष्मादि रोग के भोग होकर मृत्यु के शरण होते हैं, इसके उत्तरदायी बाललग्न करनेवाले माता-पिता नहीं हैं क्या? है।

जैनशास्त्र का मत है, कि स्मरणशक्ति या धारणाशक्ति का सम्बन्ध ज्ञानावरणीय-कर्म से है। ज्ञानावरणीय-कर्म का जितने अंश में क्षय या क्षयोपशम होगा, उतनी ही स्मृति, बुद्धि और धारणा वृद्धिगत होती है। यह मन्तव्य सत्य है, किन्तु उसमें दिमागी शक्ति सहायक है और वह शक्ति ब्रह्मचर्य से विकसित होती है।

हमको मानसिक विकास प्राप्त करके आत्मिक विकास तक पहुँचना है। आत्मिक विकास धर्म से होता है। मनुस्मृति में कहा है, कि **धर्मो रक्षति रक्षितः** अर्थात् सुरक्षित धर्म ही अपना रक्षण कर सकता है। आज, भारतवर्ष में अनेक धर्म विद्यमान होने पर पराधीनता और दुःख क्यों है? इसका कारण यह है, कि—

धर्म का आन्तरिक-स्वरूप विकृत होगया है। धर्म में से विश्वभावना, मैत्री-प्रमोद-करुणा-माध्यस्थ-भावना लुप्त होगई है। जो धर्म परस्पर प्रेमभाव प्रकट करके समस्त देश—अखिल भारत को ऐक्य शृङ्खला से जोड़ सकता है, वही धर्म सम्प्रदाय-भेद से परस्पर क्लेश लगाकर एक अखण्ड देश व समाज को छिन्नभिन्न कर देता है। प्रत्येक धर्म में अनेक सम्प्रदाय होगये हैं। वे परस्पर स्थापन-उत्थापन की प्रवृत्ति में पड़कर सत्य कर्त्तव्य से दूर होगये हैं।

इस विषम-परिस्थिति से आत्मविकास तो दूर रहा, परन्तु ऐहिक प्रगति भी रुक गई है। अब समय को पहचानकर कलहमय पुरानी प्रथा को तिलांजलि देकर प्रेमभाव-समानभाव को अवकाश देना चाहिए। गुणग्राहक बनना चाहिए।

युक्ति युक्त मगृहीयाद् बालादपि विचक्षणः ।
अन्य तृणविव स्याज्य मप्युक्त पद्मयोनिना ॥

युक्तिपूर्वक कथन हो तो बच्चे से भी ग्रहण करना और युक्तिहीन असत्य कथन चाहे वह ब्रह्मा का हो, तो भी तृणवत् त्याग देना चाहिए ।

यहाँ पर एक हंस का ध्यान उपयुक्त होगा । एक राजा ने हंस पाला था । राजसभा में एक टेबल पर दूध और पानी मिलाकर हंस के सामने रक्खा जाता था । उसमें से हंस दूध पी जाता था और पानी छोड़ देता था । एक बार पानी को बिना अलग किये वह पानी और दूध पीने लग गया । उसे देखकर एक विद्वान् ने कहा कि—

नीर क्षीर विवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषेचद् ।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः ॥

हे हंस ! दूध और पानी पृथक् करने में तू ही जब आलस्य करता है, तो इस जगत् में कुलमर्यादा का पालन कौन करेगा ? अर्थात् उत्तम के ऊपर उत्तरदायित्व भी अधिक होता है । मनुष्य हंस से भी अत्युत्तम है, तो मनुष्य का उत्तरदायित्व भी अधिक है । मनुष्य को अपनी विवेकबुद्धि (Conci nce) से सत्यासत्य का पृथक्करण करके सत्य को ग्रहण करना और असत्य को छोड़ देना चाहिए ।

'परोपकाराय सतां विभूतयः' सत्पुरुषों की सम्पत्ति-शक्ति सिर्फ परोपकार के लिए ही है । स्वाध्याय मनुष्य का नैतिक-धर्म

है। स्वाध्याय अर्थात् पठनपाठन-विद्यादान में उदार दिल रखना। जयपुर विद्या का धाम है, काशी से दूसरे नंबर में जयपुर है। एक बात सुनकर खेद होता है, कि जयपुर की राजकीय संस्कृत पाठशाला में जैनों को शिक्षा पाने का अधिकार नहीं है। जो यह बात सत्य हो, तो उसमें अवश्य सुधार होना चाहिए। राजकीय पाठशाला के व्यवस्थापक और अध्यापकों को चाहिए कि ऐसा भेदभाव दूर करके जो कोई जिज्ञासु विद्याध्ययन करने के लिए आवे और सुयोग्य हो, उसको अपनाना चाहिये।

सारांश यह है कि एक देश में रहनेवाली भिन्न २ प्रजा को परस्पर उपकार प्रत्युपकार करके एक दूसरे के निकट सम्बन्ध में आना चाहिये और भ्रातृभाव बढाकर ऐक्यबल जमाना चाहिये। ताश के खेल में आप देखते हैं, कि २-३-४-१० गुलाम, रानी और बादशाह पर भी एका विजय पाता है। दो एके अलग २ हों उनकी कीमत अल्प है। वही दो एके पास हों, तो ११ की कीमत होती है। तीन एके (१११) साथ हों, तो १११ की और चार एके साथ हों, तो ११११ की कीमत होती है। यह सब प्रताप ऐक्य का है। ऐक्य के ही प्रताप से विदेशी-प्रजा भारत पर सत्ताधीश है। हमारी यही अन्तर्भावना है, कि आपमें संघबल हो, विषमा दूर हो, शक्तियों का विकास हो और मनुष्य जन्म का साफल्य हो।

ॐ शान्ति! शान्ति! शान्ति!

उपसंहार।

समय अधिक होगया था, प्रश्नों के उत्तर सुनने की सभा-जनों की तीव्र उत्सुकता बढ़ रही थी। अतः महाराजश्री ने अवधानों का उपसंहार करते हुए फरमाया कि—

आज आपके समक्ष जो अवधान के प्रयोग किये गये हैं, वो न मंत्रसाध्य हैं न तंत्रसाध्य हैं, न कोई दैवी करामात है। यह कोई अलभ्य वस्तु नहीं है। ऐसी शक्ति कई मनुष्यों को जन्म से ही प्राप्त होती है, किन्तु वह शक्ति मन्त्र से आवृत्त होजाय तो न पैदा नहीं होती।

उस शक्ति का विकास करना चाहिए। यह तो एक सामान्य शक्ति है। आत्मा के पास तो इससे अधिकाधिक उत्तम अनंत शक्तियाँ हैं। ज्यों ज्यों चित्त की निर्मलता होगी, त्यों त्यों आत्मा की आन्तरिक शक्तियों का क्रमशः आविर्भाव होता रहता है। इसी-लिये योगीजन एकान्त में रहकर यमनियमादि का पालन करके चित्त की एकाग्रता साधते हैं।

एकाग्रता यह ध्यान है। अवधान भी ध्यान का एक प्रकार है। इसमें, मनुष्यों के बीच में रहकर एकाग्रता साधनी होती है। बिना शान्ति और एकाग्रता के धारणा रह नहीं सकती। योग के आठ अङ्गों में धारणा भी एक अङ्ग है। जैसे उलटे सुलटे पूछे हुए प्रश्नों के उत्तरों को [illegible] में धारकर धारकर धारणा का

प्रयोग बतलाया है, इसी तरह मन की विषमता हटाकर एकाग्रता द्वारा परमात्मा को हृदय में धारण करने का प्रयत्न करना ही इस प्रयोग का उद्देश्य है। अभीष्ट ध्येय की धारणा करने का दृष्टान्त आपके समक्ष रक्खा गया है। इस पर से आप महानुभाव ज्ञान और भक्ति द्वारा मल विक्षेप आवरण को दूर करने की आत्मा की निर्मलता साधने की कोशिस करेंगे, तो आज का श्रम सार्थक होगा। अस्तु।

अवधानों का क्रमश उत्तर देने से पहले उनका विषयवार पृथक्करण श० मुनिश्री ने निम्न प्रकार कर सुनाया।

अ० न० १-१४-३०-४५ वें में संस्कृत अनुष्टुप् श्लोक के चार पाद के अक्षर उत्क्रम से कहे गये थे।

अ० न० २-१५-२१-४६ में मनुष्य जीवन पर उपदेशक कथा कही गई है।

अ० न० ३ में अंग्रेजी तारीख का वार पूछा गया है।

अ० न० ४ में नक्षत्र धारा है।

अ० न० ५ में अंगूठी छिपाने का प्रयोग किया है।

अ० न० ६-१२-५४ में क्रमश संस्कृत, हिन्दी और उर्दू वाक्य के शब्द उत्क्रम से कहे गये हैं, और उन्हें क्रमवार जमाकर पूछा गया है।

अ० न० ७ में तीनों रकम की जोड़ ४५-४५ हो, ऐसी बाकी गई।

प्र० न० २९ में जन्म का सम्वत, मास, तिथि और वार पूछा गया है।

प्र० न० ३५ और ५१ में पद्द रकमों की जोड़ पूछी गई है।

प्र० न० ३८ में पाँसे के अक पूछे गये हैं।

प्र० न० ३९ में पलमा पर से चरखड पूछा गया है।

उपरोक्त प्रकार से पूछे हुए प्रश्नों का पृथक्करण करके निम्न प्रकार उत्तर दिये गये। अवधान न० १-१४-३० और ४५ के उत्क्रम अक्षरों का संस्कृत श्लोक बनता है —

अनुष्टुप् श्लोक

धर्मकार्याण्य कुर्वाणाः शर्म वाञ्छन्ति ये नराः।
विनाऽनिलोपयोगेन, नूनं ते जीवनार्थिनः॥

प्रो० सूर्यनारायणजी आचार्य ने कहा, कि ठीक इसी श्लोक के अक्षरों को मैंने उत्क्रम से कहा था। यह श्लोक मैंने आज ही नया बनाया था। यह श्लोक सुनकर सभाजनों को खूब आनन्द हुआ।

प्र० न० २-१५-३१-४६ में कथा पहले कही गई है।

प्र० न० ३ सन् १८९० मार्च की ७ तारीख को शुक्रवार था।

प्रश्नकर्ता श्री० सूरजमलजी पटोलिया ने उत्तर बराबर ठीक होना स्वीकार किया।

प्र० नं० ४ = २८ नक्षत्रों में से हस्त नक्षत्र धारा है।

उ० मास्टर अमृतलालभाई ने उत्तर सत्य होना बतलाया।

प्र० नं० ५ = सेठ नगर के जौहरी के बायें हाथ की पहली उंगली के दूसरे टेरवे में अंगूठी है।

उत्तर सुनते ही जौहरी श्री० गुलाबचन्दजी सुचन्तीया ने अपना बायाँ हाथ जनता के समक्ष ऊँचा कर दिखलाया और ठीक उसी स्थान पर अंगूठी थी, उसे देखकर सभा सहर्ष आश्चर्यान्वित हुई।

प्र० नं० ६ = 'कथनापि नहि स्वकीयम् धर्म उरस्थमन्त वीरा' वाक्य पूछा था।

प्रश्नकार पं० रमाकान्तजी ने यह वाक्य सत्य होना घोषित किया।

प्र० नं० ७ = श्री० मानमलजी मुनीम ने जिसका जोड़ ४५ ४५ आवे ऐसी रकमें लिखाने को कहा था। उस पर से दो रकम ऐसी लिखाई गई है जिनका जोड़ ४५ ४५ है।

९८७६५४३२१ = ४५
१२३४५६७८९ = ४५

इनकी जोड़ भी ४५ है, ऐसे अंक आपकी कापी में है न? ऐसा महाराज श्री ने मुनीमजी को पूछा तो मुनीमजी ने कहा, कि रकमें ८६४१६७५३२ आती है। उसकी जोड़ ४५ नहीं आती। महाराजश्री ने मुनीमजी को फिर से कापी देखने को कहा। कापी पुनः देखने पर मुनीमजी ने अपनी भूल स्वीकार

की भी बाकी का उत्तर ८६४१६७५३२ बताया, जिसके अंकों का जोड़ भी ठीक ४५ होता है। शा० महाराजश्री की इस अद्भुत शक्ति को देखकर सभाजनों ने हर्षध्वनि की।

अवधान नं० ८ में 'आशा औरन की क्या कीजे' यह संगीत-पद सुनाया था।

अ० नं० ९-१८-२७-३६-३८ में विद्यार्थियों की भिन्न २ योजना बनाई गई है।

अ० नं० १० में पं० बेचरदास जी के साथ प्राकृत भाषा में बातचीत हो चुकी है।

अ० नं० ११-२२-२३-४५-१५ = दस पखड़ी के फूल की ५ जोड़ी इस प्रकार कही हैं।

(१) ११॥ (२) १ (३) ११ (४) १९ (५) १९

(1) ३॥ (2) ११ (3) २६ (4) १७ (5) ७

उक्त रीति से ५ जोड़ी ऐसी हैं, कि प्रत्येक की जोड़ के वर्ग का फर्क १२० आता है। इसमें दूसरी खूबी यह है, कि हिंदी की १ ली तथा २ री पांखड़ी के अंक के वर्ग की जोड़ और अंग्रेजी १ ली और २ री पांखड़ी के अंक के वर्ग की जोड़ बराबर होती है। वैसे ही २ री और ३ री, ३ री और चौथी, ४ थी और ५ वीं की उक्त रीति से जोड़ बराबर होती है और वे क्रमशः ११३३। ६१२, ११३० और ३१८ हैं।

अवधान नं० १२—'श्रावक चौदह नियम पाला करते हैं'।

प्रश्नकार श्री गुलाबचन्दजी ढढ्ढा M A ने, 'पूछा हुआ हिंदी वाक्य ठीक है' ऐसा बतलाया।

अवधान नं० १३—'गुणाकार में ३ का अंक छिपाया है'।

प्रश्नकार वकील श्री दोलतमलजी ने उत्तर सत्य होना स्वीकार किया।

अवधान नं० १६—'दाहिनी मुट्ठी में ५ और बाएं मुट्ठी में १० मोती हैं'।

प्रश्नकार जौहरी दामोदरदासजी ने दोनों हाथ में मोती बताकर उत्तर बिल्कुल ठीक होना कहा। सभा यह देखकर चमत्कार हुआ।

अवधान नं० २० में [illegible] के वर्ग पर बना [illegible] श्लोक

लिखा दिया है।

अवधान नं० १६ में हिन्दी भाषा में वार्तालाप किया था।

अवधान नं० २०—'जन्मकुंडली पर से कृष्णपक्ष में जन्म मालूम होता है।'

प्रश्नकार श्री० सोभागमलजी श्रीश्रीमाल ने इन्कार करते हुए कहा, कि मेरा जन्म शुक्लपक्ष में है। महाराजश्री ने जन्म-कुण्डली दुबारा मंगाकर देखी और सामने बैठे हुए बड़े २ ज्योतिषियों के सामने परीक्षार्थ सिपुर्द की। ज्योतिषियों ने भी कहा, कि इस जन्मकुंडली पर से तो कृष्णपक्ष का जन्म ही जाहिर होता है।

इतने में श्री० सोभागमलजी श्रीश्रीमाल के पिताश्री ने खड़े होकर कहा, कि उनका जन्म कृष्णपक्ष का ही है। इस प्रकार सबूत मिलने पर मुनिश्री के ज्योतिष-ज्ञान पर सभा हर्षित होकर आश्चर्यमुग्ध होगई।

अवधान नं० २१—'सोलह कोठों में से १० वें कोठे में वस्तु छिपाई है।'

प्रश्नकार मास्टर मोतीलालजी ने, उत्तर ठीक होना मंजूर किया।

अवधान नं० २३ की समस्यापूर्ति का संस्कृत श्लोक उसी वक्त लिखाया गया है।

अवधान नं० २४—दी हुई गुण्य गुणक का गुणाकार ठीक

आठ पैसे में आता है। यह पूछने पर प्रश्नकार गिरधारीलालजी चौधरी ने उत्तर ठीक होना कहा।

अवधान नं० २५—'आमवैशाख आता है'। ऐसा महाराजश्री ने फरमाया और प्रश्नकार रा० ज्यो० पं० कन्हैयालालजी ने उत्तर यथा होना मंजूर किया।

अवधान नं० २६ 'महादेव नाम धार रक्खा है' ऐसा उत्तर मुनिश्री ने फरमाया और प्रश्नकार श्री० मिलापचंद जी कोठारी ने उत्तर बिल्कुल ठीक होना स्वीकार किया।

अवधान नं० २८ में 'देहमिनाशी हूं अविनाशी' की पंक्ति का रटन किया गया है।

अवधान नं० २९—आपका जन्म संवत् १६५७ फाल्गुन कृष्णा ८ सोमवार का होगा।

प्रश्नकार श्री० मिलापचंदजी चौधरी ने अपना जन्म दिन ठीक बताना मंजूर किया।

अवधान नं० १५ ५१ में दी हुई १५ रकमों का जोड़ ११७११० होती है।

प्रश्नकार प्रो० रामनारायणजी नागर ने उत्तर सत्य होने की घोषणा की।

अवधान नं० १७ में 'ब्रह्मचर्य विषय पर पेचदार निबन्ध लिखा दिया है।

अवधान नं० १८—'एक पीछे का अङ्क २ और दूसरे का अङ्क ५ है।'

प्रश्नकार—प्रो० रतनलालजी सुरसेनाने पाठ के छंद, बराबर होना बतलाया।

अवधान नं० ३६ = ६१-४६-२० चौसठ है और वह जन्तुर का है।

प्रश्नकार—प्रो० प० मुकुन्दलालजी ने उत्तर सत्य होना प्रकट किया।

अवधान नं० ४१ = 'अपील सुनेंगे या नहीं ?' यह प्रश्न आपके मन में था।

प्रश्नकार—श्री० भँवरलालजी विशारद ने यही प्रश्न अपने दिल में होना स्वीकार किया।

यह सुनकर सभा को बड़ा आश्चर्य हुआ।

अवधान नं० ५४ = 'फर्दे रफ्ते मिल्लतसे क़ायम है।' यह उर्दू वाक्य पूछा है।

प्रश्नकार—प्रो० एम० ए० मुगनी ने वाक्य ठीक होना प्रकट किया।

अवधान नं० ५६ में संस्कृत भाषा में वार्तालाप किया था।

उपसंहार

उपसंहार होने के बाद सभापति महोदय पं० सूर्यनारायण जी शास्त्री ने बड़े हर्ष के साथ निम्नलिखित भाषण दिया—

प्रिय महाशयो !

आज पवित्र श्री रत्नचन्द्रजी महाराज के इस शतावधानोत्सव में आपने मुझको जो प्रमुख चुनने का सम्मान दिया है, इस कृपा के लिये मैं आपका आभारी हूँ। वास्तव में ऐसे जितेन्द्रिय महात्मा के उत्सव में कोई ऐसा ही विद्वान् जितेन्द्रिय मेधावी और स्फूर्तिशाली सज्जन ही सभापतिपद के आसन को सुशोभित करता, तो उचित होता। अस्तु मुझे तो आपकी आज्ञा का पालनमात्र करना है।

श्रीमान् रत्नचन्द्रजी महाराज ! आपके इस शतावधान के कार्य में प्रकट होनेवाले कौशल को देखकर हम लोगों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ है। आपने सभी प्रश्नों के उत्तर यथार्थ दिये। इन प्रश्नों के पूछने वाले भी बड़े २ विद्वान् प्रोफेसर तथा इतर विशेषज्ञ सज्जन थे। अपने प्रश्नों के सच्चे उत्तर पाकर वे सभी संतुष्ट हुए हैं। यहां तथा श्रोताओं को भी परम आह्लाद और आश्चर्य हुआ। जन्मकुण्डली के प्रश्न का उत्तर तो और भी विस्मयोत्पादक है। क्योंकि प्रश्नकर्ता के पिता के अवसा-

नुसार कुण्डली में दिये हुए पद्य को अशुद्ध तथा आपके बताये हुए पद्य को सभी ने सच्चा जान लिया है।

मैंने नया श्लोक बनाकर व्युत्क्रम से अक्षर बोल कर आपको सुनाया था। मुझे स्वयं वे व्युत्क्रम से पढ़े हुए अक्षर भी याद नहीं हैं। परन्तु आपने तो सारा श्लोक यथाक्रम सुना दिया इस बात का मुझ पर तथा श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। वास्तव में आपकी जितेन्द्रियता निरन्तर शास्त्राभ्यास ध्यान तथा मनोनिग्रह का ही यह प्रभाव है कि जिससे आपकी स्मरण-शक्ति इतनी प्रबल हो गई है। आपने अपने लोकोत्तर गुणों से केवल जैनसमाज का ही नहीं प्रत्युत्त समस्त भारत का मुख उज्ज्वल कर दिया है। मै चाहता हूँ, कि परमात्मा आपके ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि करें। आप जैसे महापुरुष ही कैवल्य के अधिकारी हैं। मैं अपनी तथा समस्त जयपुर जनता की ओर से आपकी सेवा में धन्यवाद अर्पण करता हूँ। अब कार्य समाप्त हो चुका, अत सभा विसर्जन की जाती है।

उपसंहार

उपसंहार होने के बाद सभापति महोदय पं० सूर्यनारायण जी शास्त्री ने बड़े हर्ष के साथ निम्नलिखित भाषण दिया—

प्रिय महाशयो !

बाल यतिवर श्री रत्नचन्द्रजी महाराज के इस शतावधानोत्सव में आपने मुझको जो प्रमुख चुनने का सन्मान दिया है, इस कृपा के लिये मैं आपका आभारी हूँ। वास्तव में ऐसे जितेन्द्रिय महात्मा के उत्सव में कोई ऐसा ही विद्वान् जितेन्द्रिय मेधावी और स्फूर्तिशाली सज्जन ही सभापतित्व के आसन को सुशोभित करता, तो उचित होता। अस्तु मुझे तो आपकी आज्ञा का पालनमात्र करना है।

श्रीमान् रत्नचन्द्रजी महाराज ! आपके इस शतावधान के कार्य में प्रकट होनेवाले कौशल्य को देखकर हम लोगों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ है। आपने सभी प्रश्नों के उत्तर यथार्थ दिये। इन प्रश्नों के पूछनेवाले भी बड़े २ विद्वान् प्रोफेसर तथा इतर विशेषज्ञ सज्जन थे। आपके प्रश्नों के सच्चे उत्तर पाकर वे सभी सन्तुष्ट हुए हैं। तथा तथा श्रोताओं को भी परम आह्लाद और आश्चर्य हुआ। जन्मकुण्डली के प्रश्न का उत्तर तो और भी विस्मयोत्पादक है। क्योंकि प्रश्नकर्ता के पिता के कथना-

नुसार कुण्डली में दिये हुए पद्य को अशुद्ध तथा आपके बताये हुए पद्य को सभी ने सच्चा जान लिया है।

मैंने नया श्लोक बनाकर व्युत्क्रम से अक्षर बोल कर आपको सुनाया था। मुझे स्वय वे व्युत्क्रम से पढ़े हुए अक्षर भी याद नहीं हैं। परन्तु आपने तो सारा श्लोक यथाक्रम सुना दिया इस बात का मुझ पर तथा श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। वास्तव में आपकी जितेन्द्रियता निरन्तर शास्त्राभ्यास ध्यान तथा मनोनिग्रह का ही यह प्रभाव है कि जिससे आपकी स्मरण-शक्ति इतनी प्रबल हो गई है। आपने अपने लोकोत्तर गुणों से केवल जैनसमाज का ही नही प्रत्युत समस्त भारत का मुख उज्ज्वल कर दिया है। मैं चाहता हूँ, कि परमात्मा आपके ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि करें। आप जैसे महापुरुष ही कैवल्य के अधिकारी हैं। मैं अपनी तथा समस्त जयपुर जनता की ओर से आपकी सेवा में धन्यवाद अर्पण करता हूँ। अब कार्य समाप्त हो चुका, अत सभा विसर्जन की जाती है।

❀ ❀ ❀

शतावधानी पंडित श्री रत्नचंद्रजी महाराज के
शिष्य मुनि श्री पूनमचंद जी महाराज
के

जयपुर में हुए

अवधान--प्रयोग

(ता० १७-१-३४)

प्रस्तावना

लघु अवधानी मुनि श्री पूनमचन्द्रजी महाराज की अवस्था अभी १६ वर्ष की है, संवत् १९८६ फाल्गुन शुक्ल २ को कच्छ-वागड प्रान्त के मनफरा गाँव में १४ वर्ष की उम्र में आपने दीक्षा ली है। संवत् १९८७ के चातुर्मास से संस्कृत अभ्यास शुरू किया। बीचमें सं० १९८८ में संग्रहणी की बीमारी होने के कारण लगभग डेढ़वर्ष तक अभ्यास बंद रहा था।

अजमेर सम्मेलन में आते समय शरीर स्वस्थ न होने पर भी आपने मनोबल के सहारे मुसाफिरी के कष्ट सहकर शतावधानी जी के साथ इस तरफ पधारे।

अजमेर में लघु शतावधानी मुनि श्री सौभाग्यचन्द्र जी के अवधान देख करके आप को भी अवधान का अभ्यास करने की इच्छा हुई और शतावधानी जी के पास इसकी शिक्षा ली।

सम्मेलन हो जाने के बाद शतावधानी जी ने जयपुर चातुर्मास करने के लिये अजमेर से विहार किया। तब ज्येष्ठमास में थोड़े दिन मदनगंज भी ठहरे थे। वहाँ लघु अवधानी जीने जाहिर सभा में प्रयोग रूप से २१ अवधान किये थे। जिसमें इन्होंने अच्छी सफलता प्राप्त की।

मदनगंज से जयपुर पधारे। चातुर्मास में और मुनिवरों के साथ संस्कृत-अभ्यास किया, वह बतलाया गया है।

कार्तिकशुक्ला दशमी के रोज शतावधानी जी ने महाराजा हाईस्कूल में अवधान किये, तब भाइयाँ व बहिनें उसमें भाग न ले सकी थीं। इस लिये उनको भी देखने की

बड़ी उत्कण्ठा थी। महाराज श्री को खूब आग्रह करने पर मुनि श्री को अवधान करने के लिए आज्ञा दी।

पहले तो कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के रोज अवधान करने का विचार था। किन्तु तबियत ठीक नहीं रहने से अवधान न होसके। चातुर्मास के बाद वे तबीयत के कारण अजमेरीगेट के बाहर वैदों के बाग में ठहरे हुए थे।

स्वास्थ्य ठीक होजाने पर ता० १७-१-३४ को चौड़े रास्ते पर फूलचन्दजी के मकान में सभा का आयोजन किया गया। इस सभामें अपनी बिरादरी के सर्व बहिनों व भाइयों को आमन्त्रण दिया गया था। और अन्य बिरादरी के भी कई सज्जन इस सभा में उपस्थित थे।

इस समय, आगमोद्धार समिति की बैठक यहाँ पर होने से पंजाब के गणि श्री उदयचन्दजी महाराज, उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज एवं ठा० १६ यहां पर विराजमान थे। इस सभा का अध्यक्ष पद भी गणि श्रीको दिया गया था।

अवधान का कार्यक्रम ६ बजे से शुरू होकर बारह बजे खतम हो गया था, मुनिश्रीने इतनी लघुवय में ३५ अवधान करके अपनी शक्तिका अच्छा परिचय दे सारी सभा का मनरंजन किया था। इति शम्

ता० १०—३—३४
जयपुर सिटी —प्रकाशक

शतावधानी पंडित श्री रत्नचन्द्र जी महाराज के शिष्य मुनि श्री पूनमचन्दजी महाराज के अवधान प्रयोग का प्रोग्राम।

मंगलाचरण के बाद-

१ समानान्तर पन्द्रह रकमों की जोड़-प्रथम भाग सब रकम।
२ सोलह कोष्ठकों का यन्त्र पूर्व भाग।
३ कथा का प्रथम भाग।
४ सन्, मास और तारीख के कहने पर उस तारीख का वार कहना।
५ जिसके वर्गाङ्क उभयतः एक समान होवे ऐसी एक पांखडी की प्रथम जोड़ी।
६ छः कोष्ठकों में से धारे हुवे अंक का शोधन।
७ जन्म संवत् मास (सुद-वा दि) और वार का शोधन।
८ उस पांखडी की द्वितीय जोड़ी।
९ हिंदी वार्तालाप।
१० चौसठ घरों की कोठी का गणित।
११ समान अंक का गुण्य और गुणक का गुणाकार।
१२ छः शब्दों का संस्कृत वाक्य व्युत्क्रम से कहना।
१३ व्याख्यान के पीसप्रस-पूर्वभाग।
१४ दो मुट्ठी में रक्खे हुवे मोतियों की संख्या कहना।
१५ गुप्त रक्खे हुवे फल का शोधन।
उस पांखडी की तृतीय जोड़ी।

१७ धारे हुवे नक्षत्र का शोधन ।
१८ संगीत ।
१९ चार व्यक्तियों में वींटी (अंगुठी) प्रयोग ।
२० नव कोष्ठक का यन्त्र ।
२१ दस पांखडी की चतुर्थ जोडी ।
२२ धारी हुई राशी का शोधन ।
२३ छ शब्दों का हिंदी वाक्य उत्क्रम से कहना ।
२४ व्याख्यान के पोइन्ट्स—संपूर्ण ।
२५ एक समान नव अंकों का भागाकार ।
२६ सोलह कोष्ठकों का यन्त्र—सपूर्ण ।
२७ कथा—सम्पूर्ण ।
२८ पासे के अंक का शोधन ।
२९ पुस्तक के पृष्ठ, लकीर, और शब्द का शोधन ।
३० सोलह व्यक्तियों में वस्तु रक्खी हुई व्यक्ति का कहना ।
३१ धुन का रटन ।
३२ दस पाखडी की पञ्चम जोडी ।
३३ छ शब्दों का गुजराती वाक्य उत्क्रम से कहना ।
३४ समानान्तर पन्द्रह रकमों की जोड—बाकी छ रकम ।
३५ छ कोष्टकों में से नाम धारना ।

रतनलाल सुक्लेचा,

श्री जैपूर — अवधान प्रबंधक ।

❀ अवधान-प्रयोग ❀

❀ मङ्गलाचरण ❀

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिता,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्री सिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥

अवधान १ ला

श्रीमान् मगनलालजी ने समयान्तर रकमों में से पहली की रकमें निम्न प्रकार सुनाई—३७, ८४, १३१, १७८, २२५, २७२, ३१९, ३६६, ४१३।

मुनिवर ने ९ की रकमें ध्यान में रक्खीं और दूसरा अवधान शुरू हुआ।

अवधान २ रा

श्रीमान् गुलाबचन्दजी लूणिया ने चालक चौपाइयों के नाम

श पूर्व भाग करने के लिये ५६४ की संख्या दी । वह मुनिवर ने निम्नोक्त प्रकार से भरवाई—

२७४	२८१	२	७
६	३	२७८	२७७

अवधान २ रा

मुनिवरने बोधक कथा का प्रथम भाग सुनाया ।

सुज्ञ सज्जनो । दूसरे का भला करने से अपना भी भला होता है । और दूसरे का बुरा करने से अपना भी बुरा होता है । इस बातको समझाने के लिये एक कथा कहूँगा ।

एक राजा के ललिताङ्ग नामक एक कुँवर था । सज्जन नामक उसका एक नौकर था । यह कुमार बहुत दानी था । यह बात सज्जन से सहन न हो सकी । इसलिए राजा से उसने कहा, कि आपका कुँवर सभी को मुँह माँगा दान देता है । इस लिए उसको रोकना चाहिए ।

ललिताङ्ग हमेशा प्रात काल में पिता का दर्शन करने जाता था । दूसरे दिन जब दर्शन करने के लिए गया, तब राजाने कहा, कि तू किसो को भी मुँह मागा दान न देना । कुमार ने कहा ठीक है, ऐसा कह कर वह अपने स्थान पर गया और दान देना बन्द कर दिया ।

अवधान-प्रयोग

मङ्गलाचरण

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिता,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः
श्री सिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥

अवधान १ ला

श्रीमान् मगनभाईजी कपड़वंजी ने समानान्तर पन्द्रह रकमों में से पहली नौ रकमें भिन्न प्रकार सुनाईं–३७ ८४ १३१ १७८ २२५, २७२, ३१९, ३६६ ४१३।

मुनिवर ने ये नौ रकमें ध्यान में रक्खीं, और दूसरा अवधान शुरू हुआ।

अवधान २ रा

श्रीमान् गुलाबचन्दजी लूणिया ने ...... चौकड़ों के ......

यह शर्त स्वीकार करके दोनों आगे बढ़े रास्ते में ही एक बुढ़िया मिली। उसको जब पूछा, कि माजी ! 'पापो जय' कि "धर्मोजय ?" तो बुढी ने जवाब दिया, कि मैंने अपने लड़के को पाल पोप कर बड़ा किया, अब वह मेरी कुछ साल सम्हाल भी नहीं करता और बरखिलाफ बरतता है। इस लिए 'पापोजय' है, 'धर्मोजय' नहीं है। यह सुनतेही कुमारने सज्जन को अपना सर्वस्व दे दिया।

फिर सज्जन ने पूछा, कि कुमार ! अब बोल, 'पापोजय' है कि 'धर्मोजय' कुमारने दृढ़ता पूर्वक कहा, कि 'धर्मोजय' है, 'पापोजय' नहीं। तब सज्जन ने कहा, कि नहीं, 'पापोजय' है और कहा कि यदि कोई 'धर्मोजय' कहे, तो मैं तुम्हारा सामान दे देऊँ, यदि 'पापोजय' कहे, तो तुम्हारी आंखे फोड़ दूं। यह शर्त कुमारने स्वीकार कर ली।

दूसरे गाम जाते ही रास्ते में एक बूढा मिला। उससे यह प्रश्न पूछा, तब बूढ़ेने उत्तर दिया, कि इस जमाने में तो 'पापोजय' है। क्योंकि मेरे सब लड़के इस वख्त इस अवस्था में भी मेरी सम्हाल नहीं रखते। इस लिये इस जमाने में तो 'पापोजय' है। यह सुनकर सज्जन को अति हर्ष [illegible]आ। और जङ्गल में जा कर कुमार की [illegible] [illegible] डाली

यहा [illegible] को

एक समय एक चारण दंतली ओर से कुमार की कीर्ति सुनकर आया। लेकिन यहाँ आनेपर सुना, कि कुमार अब दान नहीं देता है। तब उसने कुमार के महल के पास आकर गुणगान के दोहे गाये। जिन्हें सुनकर कुमार उत्साहित होकर बोला, कि तेरा इच्छा हो सो माँग। तब चारण बोला, कि आपके गले का हार दे दो और चीज हमको नहीं चाहिए। कुमार वचन से बँधा हुआ था, इस लिए उसको हार देना ही पड़ा। क्योंकि कहा है,कि—

"उत्तम बोल्या ना फरे, पश्चिम ऊगे सूर"

सज्जन औसर को जब यह हाल मालूम पड़ते ही उसने राजा के पास जा कर के कहा, कि आपका जो खास हार था, वह कुमारने दान में दे दिया। यह सुनके ही राजा क्रुद्ध हुआ और कुमार को देश निकाला दे दिया।

ललितांग उसी समय अपने घोड़े और सामान के साथ रवाना हुआ। तब सज्जन भी उसके पीछे गया। रास्ते में दोनों मिले और सज्जन ने कहा कि मैं ऐसा मानता हूँ कि इस जमाने में 'पापो जय' है। तब कुमारने कहा, कि नहीं 'धर्मोजय' ऐसा वादविवाद हुआ। तब सज्जन ने शर्त की, कि सामने गाँव में जाकर किसीसे पूछें। यदि 'पापो जय' कहे, तो मैं तुम्हारा सब सामान ले लूँ और यदि 'धर्मोजय' कहे, तो मैं तुम्हारा नौकर हो जाऊँ।

यह शर्त स्वीकार करके दोनों आगे बढ़ें रास्ते में ही एक बुढ़िया मिली। उसको जब पूछा, कि माजी! 'पापो-जय' कि "धर्मोजय?" तो बुढ़ी ने जवाब दिया, कि मैंने अपने लड़के को पाल पोष कर बड़ा किया, अब वह मेरी कुछ साल सम्हाल भी नहीं करता और बरखिलाफ बरतता है। इस लिए 'पापोजय' है, 'धर्मोजय' नहीं है। यह सुनतेही कुमारने सज्जन को अपना सर्वस्व दे दिया।

फिर सज्जन ने पूछा, कि कुमार! अब बोल, 'पापोजय' है कि 'धर्मोजय' कुमारने दृढ़ता पूर्वक कहा, कि 'धर्मोजय' है, 'पापो-जय' नहीं। तब सज्जन ने कहा, कि नहीं, 'पापोजय' है और कहा कि यदि कोई 'धर्मोजय' कहे, तो मैं तुम्हारा सामान दे देऊँ, यदि 'पापोजय' कहे, तो तुम्हारी आखें फोड़ दूँ। यह शर्त कुमा-रने स्वीकार कर ली।

दूसरे गाम जाते ही रास्ते में एक बूढ़ा मिला। उससे यह प्रश्न पूछा, तब बूढेने उत्तर दिया, कि इस जमाने में तो 'पापो-जय' है। क्योंकि मेरे सब लड़के इस वक्त इस अवस्था में भी मेरी सम्हाल नहीं रखते। इस लिये इस जमाने में तो 'पापोजय' है। यह सुनकर सज्जन को अति हर्ष हुआ। और जङ्गल में जा कर कुमार की आखे फोड़ डाली।

यहा पर मुनिश्रीने कथा को अपूर्ण रखकर चौथा अवधान शुरू किया।

एक समय एक चारण दीनतो ओर से कुमार की कीर्ति सुन कर आया। लेकिन यहाँ आतेही सुना, कि कुमार अब दान नहीं देता है। तब उसने कुमार के महल के पास जाकर रायपन के दोहे गाये। जिन्हें सुनकर कुमार प्रसन्नचित्त होकर बोला, कि तेरी इच्छा हो सो माँग। तब चारण बोला, कि आपके गले का हार द दो और चीज हमको नहीं चाहिए। कुमार वचन से बँधा हुआ था, इस लिए उसको हार देना ही पड़ा। क्योंकि कहा है,कि-

"वचन बोलना मत करे, परिणाम लगे सूर'

सज्जन नौकर को यह सब हाल मालूम पड़ते ही उसने राजा के पास जा कर के कहा, कि आपका जो खास हार था, वह कुमारने दान में दे दिया। यह सुनते ही राजा गुस्सा हुआ और कुमार को देश निकाला दे दिया।

ललिताङ्ग उसी समय अपने घोड़े और सामान के साथ रवाना हुआ। तब सज्जन भी उसके पीछे गया। रास्ते में दोनों मिले और सज्जन ने कहा कि मैं ऐसा मानता हूँ कि इस जमाने में 'पापो जय' है। तब कुमारने कहा, कि नहीं 'धर्मोजय' ऐसा वादविवाद हुआ। तब सज्जन ने शर्त की कि सामने गाँव में जाकर किसीको पूछें। यदि 'पापो जय' कहे, तो मैं तुम्हारा सब सामान ले लूँ, और यदि 'धर्मोजय' कहे, तो मैं तुम्हारा नौकर हो जाऊँ।

यह शर्त स्वीकार करके दोनों आगे बढ़े रास्ते में ही एक बुढ़िया मिली। उनको जब पूछा, कि माजी! 'पापो जय' कि "धर्मोजय?" तो बुढ़ी ने जवाब दिया, कि मैंने अपने लड़के को पाल पोष कर बड़ा किया, अब वह मेरी कुछ माल सम्हाल भी नहीं करता और बरखिलाफ बरतता है। इस लिए 'पापोजय' है, 'धर्मोजय' नहीं है। यह सुनतेही कुमारने सज्जन को अपना सर्वस्व दे दिया।

फिर सज्जन ने पूछा, कि कुमार! अब बोल, 'पापोजय' है कि 'धर्मोजय' कुमारने दृढ़ता पूर्वक कहा, कि 'धर्मोजय' है, 'पापोजय' नहीं। तब सज्जन ने कहा, कि नहीं, 'पापोजय' है और कहा कि यदि कोई 'धर्मोजय' कहे, तो मैं तुम्हारा सामान दे देऊँ, यदि 'पापोजय' कहे, तो तुम्हारी आंखे फोड़ दूं। यह शर्त कुमारने स्वीकार कर ली।

दूसरे गाम जाते ही रास्ते में एक बूढा मिला। उससे यह प्रश्न पूछा, तब बूढ़ेने उत्तर दिया, कि इस जमाने में तो 'पापोजय' है। क्योंकि मेरे सब लड़के इस वख्त इस अवस्था में भी मेरी सम्हाल नहीं रखते। इस लिये इस जमाने में तो 'पापोजय' है। यह सुनकर सज्जन को अति हर्ष हुआ। और जङ्गल में जा कर कुमार की आंखे फोड़ डाली।

यहा पर मुनिश्रीने कथा को अपूर्ण रखकर चौथा अवधान शुरू किया।

एक समय एक चारण कीमती और से कुमार की कीर्ति
सुनकर आया। लेकिन यहाँ आतेही सुना, कि कुमार अब दान
नहीं देता है। तब उसने कुमार के महल के पास आकर गुणगान
के दोहे गाये। जिन्हें सुनकर कुमार प्रसन्नचित होकर बोला कि
तेरी इच्छा हो सो माँग। तब चारण बोला, कि आपके गले का
हार द दो और चीज हमको नहीं चाहिए। कुमार वचन से बँधा
हुआ था, इस लिए उसको हार देना ही पड़ा। क्योंकि कहा है,कि—

"उत्तम बोल्या ना फरे, पश्चिम ऊगे सूर"

सज्जन नौकर को यह सब हाल मालूम पड़ते ही उसने राजा
के पास जा कर के कहा कि आपका जो खास हार था, वह
कुमारने दान में दे दिया। यह सुनते ही राजा क्रुद्ध हुआ और
कुमार को देश निकाला दे दिया।

लिहाजा उसी समय अश्व घोड़े और सामान के साथ रवाना
हुआ। तब सज्जन भी उसके पीछे गया। रास्ते में दोनों मिले
और सज्जन ने कहा, कि मैं ऐसा मानता हूँ कि इस ज़माने में
'पापो जय' है। तब कुमारने कहा, कि नहीं 'धर्मोजय' ऐसा
वादविवाद हुआ। तब सज्जन ने शर्त की, कि सामने गाँव में
जाकर किसीको पूछें। यदि 'पापो जय' कहे, तो मैं तुम्हारा सब
सामान ले लूँ, और यदि 'धर्मोजय' कहे, तो मैं तुम्हारा नौकर
हो जाऊँ।

यह शर्त स्वीकार करके दोनों आगे चले रास्ते में ही एक बुढ़िया मिली। उससे जब पूछा, कि माजी! 'पापो जय' कि "धर्मोजय?" तो बुढ़ी ने जवाब दिया, कि मैंने अपने लड़के को पाल पोष कर बड़ा किया, अब वह मेरी खुद साल सम्हाल भी नहीं करता और बरखिलाफ बरतता है। इस लिए 'पापोजय' है, 'धर्मोजय' नहीं है। यह सुनतेही कुमारने सज्जन को अपना सर्वस्व दे दिया।

फिर सज्जन ने पूछा, कि कुमार! अब बोल, 'पापोजय' है कि 'धर्मोजय' कुमारने दृढ़ता पूर्वक कहा, कि 'धर्मोजय' है, 'पापोजय' नहीं। तब सज्जन ने कहा, कि नहीं, 'पापोजय' है और कहा कि यदि कोई 'धर्मोजय' कहे, तो मैं तुम्हारा सामान दे देऊँ, यदि 'पापोजय' कहे, तो तुम्हारी आंखें फोड़ दूं। यह शर्त कुमारने स्वीकार कर ली।

दूसरे गाम जाते ही रास्ते में एक बूढ़ा मिला। उससे यह प्रश्न पूछा, तब बूढ़ेने उत्तर दिया, कि इस जमाने में तो 'पापोजय' है। क्योंकि मेरे सब लड़के इस वख्त इस अवस्था में भी मेरी सम्हाल नहीं रखते। इस लिये इस जमाने में तो 'पापोजय' है। यह सुनकर सज्जन को अति हर्ष हुआ। और जङ्गल में जा कर कुमार की आखे फोड़ डाली।

यहा पर मुनिश्रीने कथा को अपूर्ण रखकर चौथा अवधान शुरू किया।

अवधान ४ था

श्रीमान् भँवरलाल जी मूथाने १९०१ मार्च की ११ तारीख को कौनसा वार था, यह पूछा।

महाराजश्रीने यह प्रश्न ध्यान में रख कर उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान ५ वाँ

श्रीमान् मूलचन्दजी कोठारी ने जिसके वर्गांक नम्बर २८८ हो, ऐसी १० पंक्ति के कुल की प्रथम जोड़ी निकालने की मुनिश्री से प्रार्थना की। महाराजश्रीने निम्न प्रकार से अङ्क लिखाये—

प्रथम जोड़ी—२२ और १४

अवधान ६ वाँ

सरगकार ने छः कोष्ठकों में से एक अंक धार कर के मुनिश्री से वह बतलाने के लिए विनती की।

महाराजश्रीने इसका उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान ७ वाँ

श्रीमान् मगनचन्द जी मेहता ने अपना जन्म कौन से संवत्, मास तिथि और वार को हुआ है ? यह पूछा तब मुनिश्री ने गणित करवाकर उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान ८ वाँ

श्रीमान् मूलचंदजी कोठारी ने इस पाँखड़ी की दूसरी जोड़ी के अंक फरमाने के लिये महाराजश्री से विनती की। मुनिश्रीने निम्न प्रकार से दूसरी जोड़ी लिखवाई—

दूसरी जोड़ी—६ और १८

अवधान ६ वाँ

श्रीमान भँवरमलजी सिंघी के साथ मुनिवर ने निम्न प्रकार से हिंदी में वार्तालाप किया।

भँवर०—जैन शास्त्र जाति-भेद के सम्बन्ध में क्या मानता है?

मुनिश्री—प्राचीन-काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ऐसे चार वर्ण थे। धर्मकार्य में चारों वर्णों का अधिकार शास्त्र मानता है।

भँवर०—शूद्र को भी धर्माधिकार है?

मुनिश्री—हरिकेशी मुनि चांडाल जाति के होने पर भी महा-तपस्वी और धर्मधुरधर हो गये हैं, जिसका वर्णन जैन सूत्र उत्त-राध्ययन में मौजूद है।

भँवर०—स्पर्शास्पर्श के विषय में आपकी क्या मान्यता है?

मुनिश्री—स्पर्शास्पर्श मानना रूढ़ि मूलक है। विशेष विवे-चन का समय नहीं है। इत्यलम।

अवधान १० वाँ

श्रीमान् जगन्नाथलालजी जौहरी ने १४ पन्ने की पोथी के सात ढेर लगाकर मुनिश्री से उसकी जोड़ बताने की विनती की।

मुनिश्री ने उत्तर बाद में देने का फरमाया।

अवधान ११ वाँ

श्रीमान् मास्टर हेमकरणजी ने ९९९९९ को ७७७७७ से गुणा करने की मुनिश्री से अर्ज की। मुनिश्रीने जवाब बाद में देने को फरमाया।

अवधान १२ वाँ

श्रीमान् माणकचन्दजी वैद्य ने छः शब्दों का संस्कृत वाक्य क्रम से पूछा—५ वाँ 'अक्षरं' १ ला 'पद्मकमलम्', ६ ठा 'पिपासया' ४ था 'भावये', ३ रा 'चातक' २ रा 'विषतुल्यम्'

मुनिश्री ने ये सब ध्यान में रख लिये।

अवधान १३ वाँ

युवराज श्री काशीरामजी महाराजश्री ने व्याख्यान दिया जिसके पॉइन्टस् मुनिश्री ने ध्यान में रख लिये संक्षेप में व्याख्यान—

धर्म के चार प्रकार हैं। दान शील तप और भाव इसमें दानधर्म मुख्य है। दान के भी तीन प्रकार हैं, अनुकम्पा दान,

सुपात्र दान और अभयदान। अभयदान सब से प्रधान है। सूयगडांग सूत्र के छट्ठे अध्ययन में कहा है, कि—'दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाण' अर्थात् सर्व दानों में अभयदान श्रेष्ठ है। मेघ कुमारके जीव ने हाथी के भव में खरगोश को बचाने के प्रयत्न से सम्यक्त्व प्राप्त किया। और दूसरे भव में राजकुमार हुआ। सुपात्र दान भी आत्मा की उन्नति करने में बड़ा साधक है। सुमुख गाथापति ने सुपात्र दान देकर संसार परित किया। अनुकम्पा दान भी पुण्य जनक है। दूसरे का दुःख अपना दुःख मानकर जो सहायता की जाती है, वह अनुकम्पादान है। अपने से नीचे सब कोटि के प्राणी अनुकम्पा के पात्र हैं, तथापि उसमें मनुष्य मुख्य है। आज कितने ही मनुष्य दुःखी हो रहे हैं। उसमें भी स्वधर्मी मनुष्यको बचाने की बड़ी आवश्यकता है। पाश्चात्य लोग मनुष्य रक्षण के लिए कितना प्रयत्न कर रहे हैं, सो आप जानतेही हैं। जैनसमाज में अनाथाश्रम, बालाश्रम विधवाश्रम खोलने की आवश्यकता को क्या आप स्वीकार नहीं करते हैं? यदि स्वीकार करते हों, तो जयपुर जैसे शहर में ऐसा आश्रम खोलनेका कभी प्रयत्न किया है? यदि नहीं किया, तो अब करना श्रीमतों का खास कर्तव्य है।

अवधान १९ वाँ

श्रीमान् रतनलालजी सुकलेचा ने १८ मोती को दोनों मुट्ठी में रख कर पूछा, कि दायें और बायें हाथ में कितने कितने मोती

है ? मुनिश्री ने गणित कराकर उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान १५ वाँ

श्रीमान् हीरेमलजी कोठारी को एक रकम धारने के लिये मुनिश्रीने फरमाया और उस रकम को ५४ से गुणा करने को फरमाया। उस रकम में से एक अंक छिपा कर बाकी की रकम बोलने को कहा। मुनिश्री ने रकम ध्यानमें रख कर उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान १६ वाँ

श्रीमान् मूलचन्दजी कोठरी के दस पंक्तियों की तृतीय जोड़ी पूछने पर मुनिश्री ने निम्न प्रकार से तीसरी जोड़ी सिखाई।

तीसरी जोड़ी—७१ और ७१

अवधान १७ वाँ

श्रीमान् भैंवरमल जी सिंघी को एक नक्शा धारने के लिये महाराज श्रीने फरमाया। कुछ गणित कराकर उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान १८ वाँ

महाराज श्री ने अपने मधुर-कण्ठ से श्लोक समेत पद सुनाया।

अब हम अमर भये न मरेंगे। ॥ अब० ॥

या कारन मिथ्यात दीयो तज, क्यों कर देह धरेंगे अब १

राग दोष जग बंध करत हय, इनको नाश करेंगे,
मर्यो अनन्त काल ते प्रानी, सो हम काल हरेंगे। अब. २
देह विनाशी हुँ अविनाशी, अपनी गति पकरेंगे,
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे व्है निखरेंगे। अब. ३
मर्यो अनन्त वार विन समज्यो, अब सुख दुःख विसरेंगे,
आनन्दघन प्रभु निकट अक्षर दो, नहीं सुमरे सो मरेंगे। अब. ४

अवधान १६ वाँ

चार औरतों में से किसी एक ने एक अगूठी किसी उँगली के किसी पेरवे में छिपा ली। महाराजश्री ने गणित करा कर उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान २० वाँ

श्रीमान् मिलापचदजी नवलखा ने ३२१ का नव कोष्टक वाला यन्त्र बनाने के लिए अर्ज की, तब मुनिवर ने निम्न प्रकार से यंत्र भरने को फरमाया।

१०४	१०६	१०८
१११	१०७	१०३
१०६	१०५	११०

है ? मुनिजी ने गणित कराकर उत्तर बाद में देने को फरमाया ।

अवधान १५ वाँ

श्रीमान् हीरेमलजी कोठारी को एक रकम धारने के लिये मुनिजीने फरमाया और उस रकम को ५४ से गुणा करने को फरमाया । उस रकम में से एक अंक छिपा कर बाकी की रकम बोलने को कहा । मुनिजी ने रकम ध्यानमें रख कर उत्तर बाद में देने को फरमाया ।

अवधान १६ वाँ

श्रीमान् मूलचन्दजी कोठरी के दस पंक्तियों की तृतीय जोड़ी पूछने पर मुनिजी ने निम्न प्रकार से तीसरी जोड़ी मिलवाई ।

तीसरी जोड़ी–७१ और ७१

अवधान १७ वाँ

श्रीमान् भँवरलाल जी सिंघी को एक नक्षत्र धारने के लिये महाराज श्रीने फरमाया । कुछ गणित कराकर उत्तर बाद में देने को फरमाया ।

अवधान १८ वाँ

महाराज श्री ने अपने मधुर-कंठ से रोचक रागिनि पद सुनाया ।

अब हम अमर भये न मरेंगे । ॥ अब० ॥

या कारन मिथ्यात दीयो तज, क्यों कर देह धरेंगे अब १

ही होगा, बुरा करेंगे तो बुरा ही होगा। इसपर एक दृष्टान्त है—

एक श्रीमन्त सेठ था। उसके एक लड़का था। वह एक दिन रत्न गहने पहन कर बगीचे में घूमने गया। सायंकाल का समय था। अंधेरा हो गया था। एक चोर की दृष्टि उसपर पड़ी। वह शोधता उसके पीछे जा रहा था परन्तु वह नजर नहीं आया। इतने में एक मेहतरानी बगीची में से आ रही थी। चोरने उससे पूछा, कि तुमने एक सेठ का लड़का इस तरफ जाते हुए देखा है? मेहतरानी ने कहा, कि हाँ, बगीचे में घूम रहा है। मेहतरानी तो रास्ते पडी। और चोर बगीचे में लडके के पास पहुँचा, तथा उसको भूठ-मूठ समझा कर एकान्त में ले गया। वहाँ उसको मार कर गहने ले पलायन हो गया।

वह लडका मर कर चोर के वहाँ पैदा हुआ। मेहतरानी भी थोडे समय में मर कर चोर की जाति में कन्या के रूप में उत्पन्न हुई, और बडी होने पर उसी लडके के साथ व्याही गई। चोरने बडी धूम धाम से लड़के का व्याह किया। लेकिन दूसरे ही दिन लडके के पेट में शूल होने के कारण वह अपने पीछे नव-विवाहिता स्त्री को विधवा बनाकर परलोक वासी हुआ।

मेहतरानी को मार्ग बतलाने का कैसा फल मिला और चोरको दूसरे को अपने लड़के से विरह कराने का कैसा फल मिला। इस दृष्टान्त से भली प्रकार आप जान गये होंगे। इसका तात्पर्य यह

अवधान २१ वाँ

मुनिश्री ने श्रीमान् मूलचंद जी कोठारी को दस पंक्ति की चतुर्थ जोड़ी निम्न प्रकार लिखवाई।

चतुर्थ जोड़ी—१४ और १८

अवधान २२ वाँ

पं० रूपनारायण जी ने एक राशि धार ली। मुनिश्री ने गणित करा कर उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान २३ वाँ

भाई श्री मदनसिंहजी ने ८ शब्दों का हिंदी वाक्य निम्न प्रकार से सुनाया।

४ था शब्द—'उज्ज्वलता', १ ला—'अवधान', ५ वाँ-'मकरन्द', ३ रा-'ज्ञानकी', २ रा-'करना', ६ ठा-'करता है'

अवधान २४ वाँ

युवाचार्य श्री काशीरामजी महाराज ने कथा पूर्ण की। मुनिश्री ने उसके पाँच पद्य तत्काल में रच दिये। संक्षेप में कथा इस प्रकार है—

'करेगा वैसा मिलेगा' पूर्व में जो किया है, वह अभी भोगते हैं। अभी जो करेंगे, सो भविष्य में भोगेंगे। भला करेंगे तो भला

...ला होगा, बुरा करेंगे तो बुरा ही होगा। इसपर एक दृष्टान्त है—

एक श्रीमन्त सेठ था। उसके एक लड़का था। वह एक दिन ...ष गहने पहन कर बगीचे में घूमने गया। सायंकाल का समय था। अंधेरा हो गया था। एक चोर की दृष्टि उसपर पड़ी। वह खोजता उसके पीछे जा रहा था परन्तु वह नजर नहीं आया। इतने में एक मेहतरानी बगीची में से आ रही थी। चोरने उससे पूछा, कि तुमने एक सेठ का लड़का इस तरफ जाते हुए देखा है? मेहतरानी ने कहा, कि हाँ, बगीचे में घूम रहा है। मेहतरानी तो रास्ते पड़ी। और चोर बगीचे में लड़के के पास पहुँचा, तथा उसको झूठ-मूठ समझा कर एकान्त में ले गया। वहाँ उसको मार कर गहने ले पलायन हो गया।

वह लड़का मर कर चोर के वहाँ पैदा हुआ। मेहतरानी भी थोड़े समय में मर कर चोर की जाति में कन्या के रूप में उत्पन्न हुई, और बड़ी होने पर उसी लड़के के साथ ब्याही गई। चोरने बड़ी धूम धाम से लड़के का ब्याह किया। लेकिन दूसरे ही दिन लड़के के पेट में शूल होने के कारण वह अपने पीछे नव-विवाहिता स्त्री को विधवा बनाकर परलोक वासी हुआ।

मेहतरानी को मार्ग बतलाने का कैसा फल मिला और चोरको दूसरे को अपने लड़के से विरह कराने का कैसा फल मिला। इस दृष्टान्त से भली प्रकार आप जान गये होंगे। इसका तात्पर्य यह

है कि दूसरे का भला करने से अपना भला होता है और दूसरे का बुरा करने में अपना भी बुरा होता है। सुज्ञेषु किं बहुना।

अवधान २५ वाँ

श्रीमान् हरखचन्दजी छाजेड़ के ११११११११११ को ७ से भाग देने की अर्ज करने पर महाराजश्री ने उत्तर याद में बताने को कहा।

अवधान २६ वाँ

मुनिश्री ने गुलाबचन्द जी मुकीम को निम्न प्रकार से सोलह कोष्ठकों का उत्तर भाग करने को फरमाया।

२८०	२७५	८	१
४	५	२७१	२७९

अवधान २७ वाँ

मुनिश्रीने कथा पूर्ण की—

एक समय, कुमार का सामान ले कर, कुमार को अकेला छोड़ कर चल दिया। 'इधर' कुमार जङ्गल में इधर उधर बड़ी कठिनता से भटकता हुआ एक वृक्ष के नीचे बैठा। वृक्ष पर हंस और हंसी आपस में बातचीत कर रहे थे। हंस ने कहा कि यहां से पूर्व दिशा में पाटलिपुर नगर में राजा की कुमारी रहती है

इसलिये कोई उसके साथ शादी नहीं करता है। सो उसने मरने का निश्चय किया है! और साथ में राजा, रानी व प्रधान भी मरने के लिये तैयार हो गये हैं। तब हंसनी ने पूछा, कि इसके लिये कोई दवा है या नहीं? हंसने उत्तर दिया, हाँ, जरूर है। मेरा विष्ठा और इस बेल के पान आंख में आंजने से अंधा भी नेत्रवाला होसकता है।

ललिताङ्ग, पक्षी भाषा अच्छी तरह जानता था। अत उसने तुरन्त ही जमीन पर पड़ी हुई विष्ठा और उस बेल के पत्ते कूंट कर अपनी आँखों पर लगा लिये। वह आध घंटे में ही नेत्रवाला, हो गया।

उसने विष्ठा और पत्ते इकट्ठे किये और पूर्व दिशा की ओर रवाना हो कर पाटलीपुर नगर मे जा पहुँचा। शहर मे ढिंढोरा पिट रहा था, कि जो कोई कुँवरी को नेत्रवाली करेगा, उसका कुँवरी और आधा राज्य भी मिलेगा। यह सुनकर ललिताङ्ग राजा के पास गया। उसने दवाई का प्रयोग किया और थोड़ी देरमें ही कुँवरी नेत्रवाली होगई। इससे सर्वत्र आनन्द होगया। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और ललिताङ्ग के साथ अपनी पुत्री का व्याह किया तथा आधा राज्य दे दिया सब आनन्द में रहने लगे।

सज्जन को रास्ते में चोरो ने लूट लिया। वह भिखारी हो गया। गाँव-गाँव में भीख माँगता बहुत समय के बाद उसी-

नगरी में आया। अतिथाह्न के महल के नीचे वह निकला, त
उसने उसको पहचान लिया और अपना पुराना मित्र जान क
अपने पास बुलाया तथा सब हकीकत पूछ कर आश्वासन दिय
और अपने पास रक्खा।

लेकिन दुष्ट आदमी हमेशा बुराई ही करता है। किसी क
अच्छा वह देखही नहीं सकता। ऐसा उपकार करने पर भी उसने
अपनी बुरी आदत न छोड़ी।

एक समय राजा के पास जाकर उसने कहा, कि कुमार का
मैं हूं। और यह तो मेरा नौकर है। राजाने यह बात मानली
और उस कुमार को मारने का निश्चय किया।

दूसरे दिन रात्रि के समय राजा ने अतिथाह्न को बुलाया।
रास्ते में दो रक्षिक रक्खे थे। अतिथाह्न ने जाने का विचार
किया। किन्तु उसकी पत्नी की आंख फड़क रही थी। इस लिए
अशुभ होने की शंका होने से उसने कुमार को रोका और कहा, कि
सज्जन को भेजो और पुछवाओ कि क्या काम है?

कुमारने सज्जन को राजा के पास जाने की आज्ञा दी। वह
दूत के साथ गया। किन्तु रास्ते में ही उसका काम तमाम हो
गया। रक्षिकों ने उसको कुमार समझकर अपनी तलवार से
उसका वार उसी पर कर डाला।

दूसरे दिन राजा को मालूम हुआ कि अतिथाह्न तो बच

गया। और वह मर गया। इस नौकर के साथ मेरी कुमारी नहीं रह सकती है। इस लिए उनसे युद्ध करने का विचार किया। और तैयारी भी कर ली। सामने कुमार ने भी युद्ध की तैयारी की। दोनों का युद्ध शुरू भी हुआ।

इधर ललिताङ्ग को देश निकाला देने के बाद राजा और रानी को बहुत ही शोक हुआ। और उन्होंने कुमार को ढूंढने के लिये सारे देश में अपने नौकरों को कुमार का चित्र देकर भेजा। उनमें से एक नौकर यहां भी राजा के पास आ पहुँचा। और चित्र बता कर पूछा, कि ऐसा कोई मनुष्य यहाँ पर है? चित्र देख कर राजा आश्चर्यान्वित हो गया। उनको विश्वास हुआ, कि जिसके साथ मैं लड़ रहा हूँ और जिसको मैं मारने का प्रयत्न कर रहा हूँ, वह तो कुमार है। यह मेरी भूल है। अपनी मूर्खता के लिये उसको अत्यन्त खेद हुआ। कुमार ललिताङ्ग को अपना सारा राज्य देकर उसने आत्मकल्याण करने के लिये संयम धारण किया।

ललिताङ्ग राजा हुआ। और आये हुए आदमियों के साथ पिता से मिलने के लिये अपने देश में गया। राजा और रानी ललिताङ्ग को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। सारे शहर में आनन्द ही आनन्द फैल गया। वृद्ध होने के कारण ललिताङ्ग को राज्यकी लगाम सौंप कर राजा धर्मध्यान में अपना समय बिताने लगे। ललिताङ्ग ने दोनों राज्यों को अच्छी तरह से चलाया और अपने

आत्मा का कल्याण किया। और सज्जन तो सारी जिन्दगी बुराई करने से दुर्गति में गया।

प्रिय सज्जनो! आप इस कथा से अच्छी तरह जान गये होंगे, कि अच्छा करने से क्या लाभ होता है। और बुरा करने से क्या हानि होती है। संक्षेप में मैं तो यही कहना चाहता हूँ, कि अपनी सारी जिन्दगी दूसरे का भला चाहने में और करने में बीत जाय। इत्यलम् ॐ शांति।

अवधान २८ वाँ

श्रीमान् हीराचन्द जी कोठारी ने संक्षेप अंक लिखाया, मुनिश्रीने गणित करा कर उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान २९ वाँ

श्रीमान् मिलापचन्दजी बोथराने पुस्तक के पृष्ठ, पंक्ति अक्षर व शब्द धार लिये। महाराज श्री ने गणित कराया और उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान ३० वाँ

सोलह चीजों में से किसी एक ने एक वस्तु छिपा ली। मुनिश्री ने गणित कराया और उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान ३१ वाँ

महाराजश्री ने ध्वनि का स्मरण कराया।

१ सत्यनो जय जिन शासन जय जय देवगुरु धर्म तत्वनो जय जय
२ ऋषभ जय प्रभु पारस जय जय महावीर जय गुरु गौतम जयजय

अवधान ३२ वाँ

मुनिश्रीने श्रीमान् मूलचंद जी कोठारी को दस पाँचकी की प्रथम जोड़ी निम्न प्रकार से लिखवाई।

प्रथम जोड़ी—२७ और २१

अवधान ३३ वाँ

श्रीमान् गिरधरलाल जी जौहरी ने छ शब्दों का गुजराती वाक्य उत्क्रम से सुनाया।

५ वाँ शब्द—'साधुजीनी', २रा 'ठरावोनो', ४था 'करवामा', १ला 'सम्मेलनना', ६ट्ठा 'शोभा छे', ३रा 'अमल'

अवधान ३४ वाँ

श्रीमान् मदनलालजी कावराने समानान्तर पन्द्रह रकमो की बाकी छ रकमें निम्नप्रकार से सुनाई—

४६०, ५०७, ५५४, ६०१, ६४८, ६९५।

महाराजश्री ने ये ध्यान में रख लीं।

अवधान ३५ वाँ

श्रीमान दुर्लभजी भाई जौहरी ने छ कोष्ठको में से एक नाम

आत्मा का कल्याण किया। और सज्जन तो सारी जिन्दगी बुराई करने से दुर्गति में गया।

प्रिय सज्जनो! आप इस कथा से अच्छी तरह जान गये होंगे, कि अच्छा करने से क्या लाभ होता है। और बुरा करने से क्या हानि होती है। संक्षेप में मैं तो यही कहना चाहता हूँ, कि अपनी सारी जिन्दगी दूसरे का भला चाहने में और करने में बीत जाय। इत्यलम्, ॐ शांति।

अवधान २८ वाँ

श्रीमान् हीराचन्द जी कोठारी ने पांचेक अंक लिखाया, मुनिश्रीने गणित करा कर उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान २६ वाँ

श्रीमान् मिलापचन्दजी बोथराने पुस्तक के पृष्ठ, पंक्ति अक्षर व शब्द याद लिये। महाराज श्री ने गणित कराया और उत्तर बाद म देने को फरमाया।

अवधान ३० वाँ

मौजूद औरतों में स किसी एक ने एक वस्तु छिपा ली। मुनिश्री न गणित कराया और उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान ३१ वाँ

महाराजश्री म ध्वनि का रटन कराया।

१ सत्यनो जय जिन शासन जय जय देवगुरु धर्म तत्त्वनो जय जय
२ ऋषभ जय प्रभु पारस जय जय महावीर जय गुरु गौतम जय जय

अवधान ३२ वाँ

मुनिश्रीने श्रीमान् मूलचंद जी कोठारी को दस पाँखड़ी की पञ्चम जोड़ी निम्न प्रकार से लिखवाई।

पञ्चम जोडी—२७ और ३१

अवधान ३३ वाँ

श्रीमान् गिरधरलाल जी जौहरी ने छ शब्दों का गुजराती वाक्य उत्क्रम से सुनाया।

५ वाँ शब्द—'साधुजीनी', २रा 'ठरावोनो', ४था 'करवामा', १ला 'सम्मेलनना', ६ट्ठा 'शोभा छे', ३रा 'अमल'

अवधान ३४ वाँ

श्रीमान् मदनलालजी कावराने समानान्तर पन्द्रह रकमो की बाकी छ रकमें निम्नप्रकार से सुनाई—

४६०, ५०७, ५५४, ६०१, ६४८, ६९५।

महाराजश्री ने ये ध्यान में रख लीं।

अवधान ३५ वाँ

श्रीमान दुर्लभजी भाई जौहरी ने छ' कोष्ठको में से एक नाम

आत्मा का कल्याण किया। और सज्जन ता सारी जिन्दगी बुराई करने से दुर्गति में गया।

मित्र सज्जनो ! आप इस कथा से अच्छी तरह जान गये होंगे, कि अच्छा करने से क्या लाभ होता है। और बुरा करने से क्या हानि होती है। संक्षेप में मैं तो यही कहना चाहता हूँ, कि अपनी सारी जिन्दगी दूसरे का भला चाहने में और करने में बीत जाय। इत्यलम् ॐ शांति।

अवधान २८ वाँ

श्रीमान् हीराचन्द जी कोठारी ने पांडित्य यंत्र लिखाया, मुनिश्रीने गणित क्रिया कर उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान २९ वाँ

श्रीमान् मिलापचन्दजी कोचरने पुस्तक के पृष्ठ, पंक्ति अक्षर व शब्द धार लिये। महाराज श्री ने गणित कराया और उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान ३० वाँ

सोलह औरतों में से किसी एक ने एक वस्तु लिया थी। मुनिश्री ने गणित कराया और उत्तर बाद में देने को फरमाया।

अवधान ३१ वाँ

महाराजश्री ने अमि का रहस्य बताया।

है, हर पाँखड़ी का जोड़ करने से उसका अन्तर २८८ आता है।

अवधान ६ ६४ कोष्ठकों में से अंक १५ पारा हुआ है।

प्रश्नकार ने उत्तर बराबर होना मंजूर किया।

अवधान ७ भागचन्द्रजी मेहता को कहा, कि संवत् १९७२ के पोष विदी दूज गुरुवार को आपका जन्म हुआ है। उत्तर बराबर होना श्री भागचन्द जी मेहता ने जाहिर किया।

अवधान ९ में हिंदी वार्तालाप हो चुका है।

अवधान १० चौसठ पत्ते की सात ढेरी हुई हैं, नीचे की जोड़ ५९ फरमाने पर छगनलालजी जौहरी ने उत्तर ठीक होना मंजूर किया।

मार लिया, मुनिश्रीने यह बात में बतलाने को फरमाया।

उपसंहार और उत्तर

अवधान १ और २४ में समानान्तर पन्द्रह रकम हैं जिनकी जोड़ ५४९० है। मदनलालजी ने उत्तर बराबर होना स्वीकार किया।

अवधान २ और २६ में सोलह कोठों का यन्त्र है। इस में किसी भी तरफ गिनने से जोड़ ५१४ आता है।

२५४	२५१	२	७
४	३	२५८	२४९
२५०	२५५	८	१
५	६	२५६	२४७

अवधान ३ व ६ १७ में कुछ नहीं गया है।

अवधान ४ सन् १९ ३ मार्च की ११ तारीख को मंगलवार था। मदनलाल ने उत्तर बिल्कुल सही होने की घोषणा की।

अवधान ५-८ ११-२१ और २२ में इस चौपाई का पूरा

है, हर पॉंखड़ी का वर्ग करने से उसका अन्तर २८८ आता है।

अवधान ६ छ कोष्ठको में से अक १५ धारा हुआ है।

प्रश्नकार ने उत्तर बराबर होना मजूर किया।

अवधान ७ भागचन्दजी मेहता को कहा, कि सवत् १९७२ के पोप विदी दूज गुरुवार को आपका जन्म हुआ है। उत्तर बराबर होना श्री भागचन्द जी मेहता ने जाहिर किया।

अवधान ९ में हिंदी वार्तालाप हो चुका है।

अवधान १० चौंसठ पन्ने की सात ढेरी हुई हैं, नीचे का जोड़ ५९ फरमाने पर छगनलालजी जौहरी ने उत्तर ठीक होना मजूर किया।

अवधान ११ में ९९९९९ को ७७७७७ से गुणने का पूछा है। उसका जवाब ७७७७१२२२ ३ है। प्रश्नकार ने उत्तर सही होना स्वीकार किया।

अवधान १२ मे शब्दों का सम्बद्ध वाक्य इस प्रकार है।
'बालकः मित्रुराान् पप धणान् यावते कलशर पिपासया'
श्रीपालचन्दजी वैद ने जवाब ठीक होना मञ्जूर किया।

अवधान १३—२४ में गुरुदामजी ने व्याख्यान दिया है, जिसके पोइन्टस निम्न प्रकार मुनिश्री ने फरमाये—

दान शील तप और भाव धर्म के चार प्रकार हैं। दान के तीन प्रकार हैं। अभय दान सर्वश्रेष्ठ है। अपने सधर्मी भाई का मदद देना चाहिए। दूसरे का भला करने से अपना भी भला होता है। इसपर एक कथा कही गई है।

(मुनिश्री ने वह कथा को संक्षेप में वहां कह सुनाया)

अवधान १४ दाईं मुट्ठी में ११ मोती और बाईं मुट्ठी में ७ मोती हैं। ऐसा फरमाने पर श्रीरतनलालजी सुकलेचा ने उत्तर ठीक होना मञ्जूर किया।

अवधान १५—१ एक का अंक छिपाया है। सिरेमलजी कोठारी ने 'सही है' ऐसा कहा।

अवधान १७—अट्ठारह अक्षर में से 'मरची' पदक बाद हुआ है। भँवरलालजी सिंघी ने उत्तर सत्य स्वीकार किया।

अवधान १८ में संगीत पद सुना दिया है।

अवधान १९—पहली व्यक्तिके बाएँ हाथ की चौथी उँगली के पहले पेरवे में अँगूठी है। यह उत्तर सही था।

अवधान २०—में नव कोष्ठक का यन्त्र हो चुका है।

अवधान २२—बारह राशियों में से 'मिथुन' राशि धारी हुई है। प० रूपनारायणजी ने उत्तर ठीक होना मंजूर किया।

अवधान २३—"अवधान करना ज्ञान की उज्ज्वलता प्रकट करता है" यह हिंदी वाक्य ठीक था।

अवधान २५—१११११११११ को ७ से भाग देने से भाग फल १५८७३०१५ आता है और शेष ६ रहते हैं। उत्तर ठीक था।

अवधान २८—एक पासे का अक दो और दूसरे का तीन है। श्रीहीरालालजी कोठारी ने उत्तर ठीक होना मजूर किया।

अवधान २९—पुस्तकका पृष्ठ ६२ पक्ति लकीर ८ और तीसरा शब्द धारा है। श्रीमिलापचदजी बोथराने उत्तर ठीक होना घोषित किया।

अवधान ३०—सोलह व्यक्तियों में से तीसरी व्यक्तिने वस्तु छिपाई है। उत्तर सत्य था।

अवधान ३१—ध्वनि का रटन हो चुका है।

अवधान ३३—'सम्मेलनना ठरावोनो अमल करवामा साधु-

बीनो होता है। यह *गुजराती* वाक्य ठीक होना श्रीगिरधरलालजी चौधरी ने मंजूर किया।

अवधान १५—क पाठकों में से धारा हुआ नाम 'पुरुषसिंह' है। यह सुनकर हर्ष के साथ श्रीमान् दुर्लभजी भाई चौधरी ने उत्तर ठीक होना मंजूर किया।

अवधान का कार्यक्रम पूरा हो चुका था। समय भी काफी हो चुका था। इसलिये प्रमुख स्थान से गणिजी ने संक्षेप में अपना व्याख्यान समाप्त किया। और श्रीमान् धीरजलालजी टुरखिया ने उपस्थित सज्जनों की तरफ की ओर से आभार माना इसके बाद गणिजी ने श्रोताओं की प्रशंसा की और महावीर प्रभु की जय गर्जना के साथ सभा विसर्जन हुई।